※ ओ३म् ※

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः पञ्चमो भागः

□□

सामासिकः

□□

वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, अजमेर

॥ ओ३म् ॥

अथ वेदाङ्गप्रकाशः

□□

तत्रत्यः पञ्चमो भागः

सामासिकः

□□

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां चतुर्थो भागः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ॥

पठनपाठनव्यवस्थायां सप्तमं पुस्तकम् ॥

□□

प्रकाशक :

वैदिक पुस्तकालय,

दयानन्द आश्रम, अजमेर (राज०)

नवमी वार १००० } वि० संवत् २०५१ } मूल्य : रु. १५.००

वेदाङ्गप्रकाशः

पञ्चमो भागः

सामासिकः

प्रकाशक : वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

मुद्रक : वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

संस्करण : नवम्, वि. सं. २०५१

सृष्टि संवत् : १,९६,०८,५३,०९४

मूल्य : १५ रुपये

प्रकाशकीय

गुरुवर विरजानन्दजी ने गंगा के किनारे एक पण्डित को अष्टाध्यायी पाठ करते हुए सुना। उन्हें तत्काल रहस्य समझ में आ गया जो व्याकरण उन्होंने पढ़ा है उसका मूल यह अष्टाध्यायी है। यह उनकी पारदर्शी प्रतिभा का परिणाम था जो उन्होंने इसे अनुभव किया। सुनकर अष्टाध्यायी को स्मरण कर लिया और आर्ष पद्धति की पुनः स्थापना कर दी। इसके लिए उन्हें किसी ने प्रेरणा नहीं दी, यह बात जहाँ आर्ष ग्रन्थरत्न की विशेषता की ज्ञापक है वहीं इस रत्नपरीक्षा का सामर्थ्य उनके ऋषित्व को इंगित कर रहा है। गुरु के इस अनुसन्धान को स्वामी दयानन्दजी महाराज ने भूमण्डल में प्रचारित प्रसारित किया। इस प्रकार इस देश में विलुप्त आर्ष पद्धति का पुनरुद्धार प्रज्ञाचक्षु विरजानन्दजी ने किया। उन्होंने अष्टाध्यायी क्रम के रहस्य को समझा और उसी दिन से अपनी पाठशाला में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पठनपाठन प्रारम्भ कर दिया।

जो व्यक्ति अष्टाध्यायी पद्धति से नहीं पढ़ सके उनके लिए वेदांगप्रकाश की रचना की है। जो अष्टाध्यायी पद्धति से पढ़ते हैं उनके लिए अष्टाध्यायी भाष्य की रचना प्रारम्भ की थी परन्तु वह कार्य पूरा नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में व्याकरण के क्षेत्र में वेदांगप्रकाश का विशेष महत्त्व है। इससे ऋषि दयानन्द की श्रद्धा का परिचय मिलता है। ऋषि का मन्तव्य था प्रत्येक आर्य संस्कृत भाषा सीखे। बड़ी आयु के लोगों को व्याकरण पढ़ने की सुविधा के लिए इन ग्रन्थों का प्रणयन किया। आशा है पाठक लाभ उठायेंगे।

—गजानन्द आर्य

मन्त्री, परोपकारिणी सभा

सामासिक विषयसूची

—:❊❊:—

॥ ओ३म् ॥

अथ सामासिकभूमिका

समास उसे कहते हैं कि जिसमें अनेक पदों को एक पद में जोड़ देना होता है। जब अनेक पद मिल के एक पद हो जाता है तब एक पद और एक स्वर होते हैं, पर समास विद्या के जाने विना कुछ विदित नहीं हो सकता। इसलिये समास विद्या अवश्य जाननी चाहिये।

समास चार प्रकार का होता है—

एक अव्ययीभाव। दूसरा तत्पुरुष। तीसरा बहुव्रीहि और चौथा द्वन्द्व॥

अव्ययीभाव में पूर्वपदार्थ, तत्पुरुष में उत्तरपदार्थ, बहुव्रीहि में अन्य पदार्थ और द्वन्द्व में उभय अर्थात् सब पदों के अर्थ प्रधान रहते हैं। जिसका अर्थ मुख्य हो वही प्रधान कहाता है।

अव्ययीभाव के दो भेद होते हैं—

एक पूर्वपदाव्यायीभाव। दूसरा उत्तरपदाव्ययीभाव॥

तत्पुरुष नव प्रकार का होता है—

द्वितीया तत्पुरुष। तृतीया तत्पुरुष। चतुर्थी त०। पञ्चमी त०। षष्ठी त०। सप्तमी त०। द्विगु। नञ् और कर्मधारय॥

बहुव्रीहि दो प्रकार का है—

एक तद्गुणसंविज्ञान। दूसरा अतद्गुणसंविज्ञान॥

द्वन्द्व भी तीन प्रकार का होता है—

एक इतरेतरयोग । दूसरा समाहार और तीसरा एकशेष ।।

इस प्रकार से ४ समासों के १६ (सोलह) भेद समझने योग्य हैं। और इनमें से अव्ययीभाव, तत्पुरुष और बहुव्रीहि लुक् और अलुक् भेद से दो २ प्रकार के होते हैं। इनके उदाहरण आगे आवेंगे।

इन समासों को यथार्थ जानने से सर्वत्र मिले हुए पद पदार्थ और वाक्यार्थ जानने में अति सुगमता होती है और समस्त पदयुक्त संस्कृत बोलना तथा दूसरे का कहा समझ भी सकता है। यह भी व्याकरण विद्या की अवयव विद्या है जैसी कि सन्धि विषय और नामिक विद्या लिख आये।

यहाँ जो पठनपाठन के लिये एक उदाहरण वा प्रत्युदाहरण लिखा है इसे देख इसके समान अन्य उदाहरण वा और प्रत्युदाहरण भी उपर से पढ़ने पढ़ाने चाहियें।

इसके आगे प्रकृत जो कुछ लिखा जाता है वह सब (समर्थः पदविधिः ।। अ० २ । १ । १) इस सूत्र के भाष्यस्थ वचन हैं, जिसको जानने की इच्छा हो वह उक्त सूत्र के महाभाष्य में देख लेवे।

(सापेक्षमसमर्थं भवतीति ।। महा० अ० २ पा० १ आ० १)

जो एक पद के साथ अपेक्षा करके युक्त हो वह समर्थ होता है और जो अनेक पदों के साथ आकर्षित होता है वह प्रायः समास के योग्य नहीं होता।

जो सापेक्ष असमर्थ होता है ऐसा कहा जावे तो 'राजपुरुषो दर्शनीयः' यहाँ वृत्ति प्राप्त न होगी।

यह दोष नहीं, यहाँ प्रधान सापेक्ष है क्योंकि प्रधान सापेक्ष का भी समास होता है और जहाँ प्रधान सापेक्ष है वहाँ वृत्ति अर्थात् समास होगा। उदाहरणम्—'देवदत्तस्य गुरुकुलम्'। यह दोष नहीं। यहाँ षष्ठी समुदाय गुरुकुल की अपेक्षा नहीं करती है। जहाँ षष्ठी समुदाय की अपेक्षा नहीं करती वहाँ समास भी नहीं होता। 'किमोदनः शालीनाम् ?' यह कौन से शाली अर्थात् चावलों का आदेन है ? ऐसे अर्थ में तण्डुलमात्र की अपेक्षा करके यह षष्ठी नहीं है। इसलिये यह समुदाय अपेक्षा नहीं। इत्यादि स्थलों में समास नहीं होता।

समास समर्थों का होता है।

समर्थ किसको कहते हैं ?

पृथक् पृथक् अर्थ वाले पदों के एकार्थीभाव को। यहाँ अगले वाक्यों में पृथक् पृथक् अर्थ वाले पद हैं:—जैसे—'राज्ञः पुरुषः' इस वाक्य में राज्ञः और पुरुषः ये दोनों पद अपने अपने अर्थ के प्रतिपादन करने में समर्थ हैं। और समास होने से इनका एकार्थीभाव हो जाता है :—यथा—राजपुरुष इत्यादि [इन] प्रयोगों में समास कृत क्या विशेष है ?

विभक्ति का लोप, अव्यवधान, यथेष्ट परस्पर सम्बन्ध, एकस्वर, एक पद और एक विभक्ति रहती है।

एकार्थीभाव पक्ष में समर्थ पद का अर्थ—संगतार्थः समर्थः, संसृष्टार्थः समर्थ इति। और जैसे संसृष्टार्थ है जैसे संगतं घृतम्, ऐसा कहने से मिला हुआ विदित होता है। और जैसे संसृष्टोऽग्निरिति, ऐसा कहने से भी उक्त ही अर्थ विदित होता है।

और जहाँ व्यपेक्षा सामर्थ्य होता है वहाँ संप्रेक्षितार्थः समर्थः और संबद्धार्थं समर्थ इति, यहाँ अनेक पदों का सम्बन्धमात्र प्रयोजन है, इस व्यपेक्षा में अनेक पद, अनेक स्वर, अनेक विभक्ति, वर्त्तमान रहती हैं ।

वा–सविशेषणानां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यत इति वक्तव्यम् ॥ —महा० अ० २ पा० १ आ० १ ॥

अनेक विशेषण युक्त विशेष्य का समास और समस्त का विशेषण के साथ योग नहीं होगा । सविशेषण जैसे 'ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः' यहाँ राजा का विशेषण ऋद्ध होने से पुरुष के साथ राजन् शब्द का समास नहीं होता, (वृत्त) 'राजपुरुषः' इस समस्त राजन् शब्द के साथ ऋद्ध विशेषण का योग भी नहीं हो सकता※ इसलिये समास-विद्या को समझ लेना सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है ॥

॥ इति भूमिका ॥

※ अर्थात् वही असमर्थ होता है कि जिसका सम्बन्ध अनेक पदों के साथ हो जैसे राजन् शब्द का सम्बन्ध ऋद्ध और पुरुष के साथ होने से समास न हुआ वैसे सर्वत्र समझना चाहिए और जहाँ प्रधान की सापेक्षा [अपेक्ष] हो वहाँ तो सविशेषण और वृत्त का भी विशेषण के साथ योग होता है जैसे 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' यहाँ गुरु प्रधान है, इसलिये कुल के साथ समास और देवदत्त का सम्बन्ध भी हो गया ॥

अथ सामासिकः ॥

अथ सामासिकः[1] प्रारभ्यते । तत्र समासाश्चत्वारः । प्रथमोऽव्ययीभावः । द्वितीयस्तत्पुरुषः । तृतीयो बहुब्रीहिः । चतुर्थश्च द्वन्द्वः ।

१—समर्थः पदविधिः[2] ॥ अ० २ । १ । १ ।

समर्थपदयोरयं[3] विधिशब्देन सर्वविभक्त्यन्तः समासः । समर्थस्य विधिः समर्थविधिः । समर्थयोर्विधिः समर्थविधिः । समर्थानां विधिः समर्थविधिः । समर्थाद् विधिः समर्थविधिः । समर्थे विधिः समर्थविधिः । पदस्य विधिः पदविधिः । पदयोर्विधिः पदविधिः । पदानां विधिः पदविधिः । पदाद् विधिः पदविधिः । पदे विधिः पदविधिः । समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च समर्थविधिश्च [समर्थविधिश्च]

---

१. समासानां व्याख्यानो ग्रन्थः सामासिकः । जिस ग्रन्थ में समासों की व्याख्या हो उसका नाम सामासिक है ।

२. यह [परिभाषा] सूत्र एकपद और अनेक पदों के सम्बन्ध में साधुत्व विधायक है ।

३. जो यह आगे व्याख्या लिखी जाती है वह सब महाभाष्य की है ।

समर्थविध्यः ।। पदविधिश्च पदविधिश्च पदविधिश्च पद-विधिश्च [पदविधिश्च] पदविधयः । समर्थविधयश्च पद-विधयश्च । समर्थः पदविधिः । पूर्वःसमास उत्तरपदलोपी याहच्छिकी च विभक्तिः । सामर्थ्यं द्विविधम् । एकार्थीभावः व्यपेक्षा च ।।

यह महाभाष्य का वचन है । जिसमें भिन्न-भिन्न पदों का एकपद, अनेक स्वरों का एकस्वर, अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति हो जाती है उसको एकार्थीभाव, और एकपद का अनेक पदों के साथ सम्बन्ध होने को व्यपेक्षा कहते हैं ।। सो प्रत्ययविधान में और पराङ्गवद्भाव में भी जाननी चाहिये । समास का प्रयोजन यह है कि अनेक पदों का एकपद, अनेक विभक्तियों की एक विभक्ति और अनेक स्वरों का एक स्वर होना । "वृत्तिस्तर्हि कस्मान्न भवति महत्कष्टं श्रित इति । सविशेषणनां वृत्तिर्न वृत्तस्य वा विशेषणं न प्रयुज्यत इति" । यहां महत् शब्द विशेषण और कष्ट विशेष्य है । फिर विशेषण सहित जो कष्ट है सो श्रित के साथ समास को प्राप्त नहीं होता और जो समास भी करलें तो भी कष्ट का श्रित के साथ विशेषण का योग नहीं हो सकता । यहां वृत्ति नाम समास का है । इसके उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण इस सूत्र के आगे कहेंगे ।।

२—सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ।। अ० २ । १ । २ ।।

जो आमन्त्रित पद परे हो तो पूर्व सुबन्त को पराङ्गवद्भाव स्वर विधि करने में होवे । अर्थात् आमन्त्रित पद का जो स्वर है वही पूर्व सुबन्त का स्वर हो जावे । सम्बोधन पद के परे सुबन्त पूर्व पद के स्थान में पराङ्गवत् अर्थात् सम्बोधन पद का

जो स्वर है वही स्वर हो जाता है । कुण्डेनाटन् । परशुना वृश्चन् । मद्राणां राजन् । कश्मीराणां राजन् । मगधानां राजन् । सुबिति किम् ? पीड्ये पीड्यमान । आमन्त्रित इति किम् ? गेहे गार्ग्यः । परग्रहणं किम् ? पूर्वस्य माभूत् । देवदत्तस्य कुण्डेनाटन् । स्वर इति किम् ? कूपे सिञ्चन् । चर्मे नमन् [चर्म नमन्] षत्वणत्वे प्रति पराङ्गवन्न भवति ।

३–वा०–सुबन्तस्य पराङ्गवद्भावे समानाधिकरणस्योपसंख्यानमनन्तरत्वात् ॥

जैसे—तीक्ष्णया सूच्या सीव्यन् । तीक्ष्णेन परशुना वृश्चन् ॥

४–वा०–अव्ययानां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

उच्चैरधीयान । नीचैरधीयान ॥

५–प्राक् कडारात् समासः ॥ अ० २ । १ । ३ ॥

जो इस सूत्र से आगे (कडाराःकर्मधारये ॥ अ० २।२।३८) यह सूत्र है वहां तक समास का अधिकार जानना योग्य है ॥

६–सह सुपा ॥ अ० । २ । १ । ४ ॥

'सह' ग्रहणं योगविभागार्थम् । सह सुप् समस्यते केन सह । समर्थेन । अनुव्यचलत् । अनुविशत् । ततः सुपा च सह सुप् समस्यते । उदाहरणम् । अजाकृपाणीयम् । पुनरुत्स्यूतम् । वासो देयं न पुनर्निष्कृतोरथः अधिकारश्च लक्षणं च । यस्य समासस्यान्यल्लक्षणं नास्ति, इदं तस्य लक्षणं भविष्यति ।

ऐसा जानना कि जिसका लक्षण कोई सूत्र न होवे उस समास की सिद्धि करने वाला यह सूत्र है । यहाँ से आगे तीन पद का अधिकार है । सो ये हैं—सह, सुप् और सुपा ॥

७–वा०–इवेन सह समासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च वक्तव्यम् ॥

जैसे— **वाससी इव । कन्ये इव ॥**

[अथ अव्ययीभावः]

८–अव्ययीभावः ॥ अ० २ । १ । ५ ॥

यहां से आगे जो समास कहेंगे उसकी अव्यय संज्ञा जाननी चाहिये । "पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः" । अव्ययीभावसमास में पूर्वपद का अर्थ प्रधान होता है ॥

९–अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययाऽसम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथाऽऽनुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ॥ अ० २ । १ । ६ ॥

विभक्ति से लेके अन्त शब्द पर्यन्त १६ (सोलह) अर्थ हैं उनमें वर्त्तमान जो अव्यय हैं सो सुबन्त के साथ समास पावें, वह अव्ययीभावसंज्ञक हों । "विभक्तिवचने तावत्" । वचन शब्द का विभक्ति आदि सब के साथ योग जानना ।

विभक्ति—स्त्रीष्वधिकृत्य कथा प्रवर्त्तते । 'अधिस्त्रि'[1] अधिकुमारि ।

१०–ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ अ० १ । २ । ४७ ॥

---

१. 'अव्ययीभावश्च' (अ० २ । ४ । १८) इस सूत्र से यहां नपुंसकलिङ्ग होता है और "अव्ययादाप्सुपः" (अ० २ । ४ । ८२) इस सूत्र से यहां सुप् का लुक् होता है ।

जो नपुंसक लिङ्ग अर्थ में वर्त्तमान हो तो उसके अच् को ह्रस्व हो। अतिरि कुलम्। अधिस्त्रि, इत्यादि। नपुंसक इति किम्। ग्रामणीः। सेनानीः। प्रातिपदिकस्येति किमर्थम्। काण्डे तिष्ठतः। कुड्ये तिष्ठतः॥

समीपवचने—कुम्भस्य समीपम्=उपकुम्भम्। उपमणिकम्। उपशालम्॥

११–नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः॥ अ० २।४।८३॥

अदन्त अव्ययीभाव समास से सुप का लुक न हो किन्तु उसको अम् आदेश हो जाय पञ्चमी को वर्ज्ज के। जैसे—उपराजम्। अधिराजम्। अनश्चेति टच्[1]। उपमणिकं तिष्ठति। उपमणिकं पश्य। उपकुम्भं पश्यति। अपञ्चम्या इति किम्। उपकुम्भादानय॥

१२–तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्। अ० २।४।८४॥

अदन्त अव्ययीभाव समास से तृतीया और सप्तमी को अम् आदेश बहुल करके हो अर्थात् पक्ष में लुक् हो। जैसे—उपकुम्भं कृतम्। उपकुम्भेन कृतम्। उपकुम्भं निधेहि। उपकुम्भे निधेहि॥

समृद्धि—मद्राणां समृद्धिः 'सुमद्रम्"। "सुमगधं" वर्त्तते।

व्यृद्धि—ऋद्धि का न होना गवदिकानामृद्धेरभावः "दुर्गवदिकम्"। दुर्यवनम्" वर्त्तते।

अर्थाभाव—वस्तु का अभाव। मक्षिकाणमभावो "निर्मक्षिकम्। "निर्मशकम्" वर्त्तते।

---

१. [अनश्च॥ अ० ५।४।१०८॥ सामासिक—३२]॥

अत्ययः—नाशः [निवृतिः] अतीतानि हिमानि यः समयं "र्निहिमम्" । "निःशीतम्" वर्त्तते ।

असम्प्रति—अर्थात् इस समय न हो। सम्प्रति क्षुन्नास्ति "अतिक्षुधम्" । अतितैसृकम्" ।

शब्दप्रादुर्भाव—शब्द का प्रकाश [प्रसिद्ध] होना । ["इतिपाणिनि"] । "इतिपतञ्जलि" । अर्थात् पाणिनि, पतञ्जलि शब्द लोक में प्रसिद्ध हैं] ।

पश्चात्—रथानां पश्चात् "अनुरथं" पादातम् ।

यथा—योग्यता वीप्सा पदार्थानतिवृत्तिः सादृश्यं चेति यथार्थाः ।

[योग्यतायाम्—] अनुरूपम् । यह रूप के योग्य है ।

[वीप्सायाम्—] अर्थमर्थम्प्रतीति "प्रत्यर्थम्" ।

पदार्थानतिवृत्तौ—[शक्तिमनतिक्रम्य] "यथाशक्ति" "यथाबलम्" इत्यादि ।

[सादृश्ये—हरेः सादृश्यं—"सहरि"] ।

आनुपूर्व्यम्—अनुक्रमम् [ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेति "अनुज्येष्ठम्"] "अनुज्येष्ठं" प्रविशन्तु भवन्तः ।

यौगपद्यम्—एककालम् । "सचक्रं" धेहि । युगपच्चक्रं धेहीत्यर्थः ।

सादृश्यं नाम—समान । कालेसमानम् । सदृशः सख्या "ससखि" ।

सम्पत्तिः—अर्थात् अच्छे प्रकार प्राप्ति । ब्रह्मणः सम्पत्तिः "सब्रह्म" । "सधनं" देवदत्तस्य ।

साकल्यं नाम—सब । तुषेण सह भुङ्क्ते "सतुषम्" [तुषसहितं सकलं भुनक्तीत्यर्थः] । "सबुसम्" ।

अन्तवचन—

१३–ग्रन्थान्ताधिके च ॥ अ० ३ । ६ । ७९ ॥

जो ग्रन्थ उत्तर पद परे हो तो ग्रन्थान्त में तथा अधिक अर्थ में वर्त्तमान् जो सह शब्द है उसको स आदेश हो । सज्योतिषधीते समुहूर्त्तम् । ससंग्रहं व्याकरणमधीते । अधिके । सद्रोणा खारी । समाषः कार्षापणः ।।

१४–अव्ययीभावे चाकाले ॥ अ० ६ । ६ । ८१ ॥

अव्ययीभाव समास में कालवाची भिन्न उत्तरपद परे हो तो सह को स आदेश हो । सचक्रम् । सबुसम् । अकाल इति किम् । सहपूर्वाह्णम् । सभाष्यम् । साग्न्यधीते । [?]

१५–यथाऽसादृश्ये ॥ अ० २ । १ । ७ ॥

जो सादृश्य भिन्न अर्थ में [यथा] अव्यय [है] सो सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो, वह समास अव्ययीभावसंज्ञक हो । यथावृद्धं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । ये ये वृद्धाः "यथावृद्धम्" । यथाऽध्यापकम् । असादृश्य इति किम् । यथा देवदत्तस्तथा यज्ञदत्तः ।

१६–यावदवधारणे ॥ अ० २ । १ । ८ ॥

जो अवधारण [इयत्तापरिच्छेद] अर्थ में वर्त्तमान [यावत्] अव्यय [है] सो सुबन्त के सङ्ग समास पावे । यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रयस्व । यावन्त्यमत्राणि संभवन्ति पञ्च षड् वा तावत् आमन्त्रयस्व । अवधारण इति किम् । यावद्दत्तं तावद्भुक्तम् । नावधारयामि । कियन्मया भुक्तमिति ।

१७–सुप्प्रतिना मात्रार्थे ॥ अ० २ । १ । ९ ॥

मात्रा बिन्दुः स्तोकमल्पमिति पर्यायाः । जो मात्रार्थ में वर्त्तमान प्रति उसके साथ सुबन्त समास पावे सो अव्ययीभाव संज्ञक हो । अस्त्यत्र किञ्चिच्छाकम् "शाकप्रति" । सूपप्रति । ओदनप्रति । मात्रार्थ इति किम् । वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् । सुबिति वर्त्तमाने पुनः सुब्ग्रहणमव्ययनिवृत्त्यर्थम् ।

१८–अक्षशलाकासंख्याः परिणा ॥ अ० २ । १ । १० ॥

जो अक्ष, शलाका और संख्यावाची शब्द एक द्वि त्रि इत्यादि, परि के साथ समास को प्राप्त हों वह अव्ययीभाव संज्ञक समास है । अक्षेण परिक्रीडन्त इति "अक्षपरि" । शलाकापरि । एकपरि । द्विपरि । त्रिपरि ।

१९–वा०–अक्षशलाकयोश्चैकवनान्तयोरिति वक्तव्यम् ॥

इह माभूत् । अक्षाभ्यां वृत्तम् । अक्षैवृत्तम् ।

२०–वा–कितबव्यवहार इति वक्तव्यम् ॥

इह माभूत् । अक्षेणेदं न तथा वृत्तं शकटेन यथा पूर्वमिति ।

२१–विभाषा अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या[1] ॥ अ० । १ । ११ ॥

---

१. [यह एक ही सूत्र है, दो नहीं । पूर्व मुद्रित संस्करणों में संशोधकादि भूल से पृथक्-पृथक् छप गया है । इसके लिये देखिये महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी कृत अष्टाध्यायीभाष्य भाग प्रथम, पृष्ठ १८१ से १८३ । वहां इस सूत्र पर स्वनामधन्य महर्षि लिखते हैं—'इस सूत्र में 'विभाषा' यह अधिकार है । अर्थात् जब तक नित्य न आवे, तब तक

अधिकार। इसके आगे जो-जो समास कहेंगे सो-सो विभाषा करके होंगे अर्थात् पक्ष में विग्रह भी रहेगा। जहाँ-जहाँ वि० ऐसा संकेत करें वहां-वहां विकल्प जानना। जो अप, परि बहिस् और अञ्चु का [पञ्चम्यन्त] सुबन्त के साथ समास विकल्प करके होता है वह अव्ययीभाव कहाता है। जैसे—वि० अपत्रिगर्त्तं वृष्टो देवः। अपत्रिगर्तेभ्यो वा। ग्रामाद्बहिर्बहिर्ग्रामम्। बहिर्ग्रामात्। बहिश्शब्दयोगे पञ्चमीभावस्यैतदेव ज्ञापकम्।

२२—आङ् मर्यादाभिविध्योः ॥ अ० २। १। १२ ॥

जो मर्यादा और अभिविधि अर्थ में आङ् पञ्चम्यन्त सुबन्त के सङ्ग वि० समास को प्राप्त होता है सो समास अव्ययीभावसंज्ञक होवे। [मर्यादा—] आपाटलिपुत्रं वृष्टो देवः। आपाटलिपुत्रात्। अभिविधि—आकुमारं यशः पाणिनेः। आकुमारेभ्यः।

२३—लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये ॥ अ० २। १। १३ ॥

जो आभिमुख्य [अर्थात् सम्मुख] अर्थ हो तो लक्षण अर्थात् चिह्नवाची सुबन्त के साथ अभि और प्रति [शब्द]

विकल्प करके समास हुआ करेगा। महाभाष्यकार ने इस सूत्र में योग-विभाग किया है। अर्थात् "विभाषा" यह अधिकार के लिये पृथक् किया है। इससे यह जाना जाता है कि पाणिनि जी महाराज का बनाया एक ही सूत्र है। और जयादित्य भट्टोजिदीक्षितादि नवीन लोगों ने इस सूत्र को अलग-अलग अर्थात् दो सूत्र करके व्याख्या की है। तथा इस समय के छपे हुए पुस्तकों [अष्टाध्यायी, न्यास आदि] में भी दो सूत्र लिखे हैं। सो महाभाष्य से विरुद्ध है। क्योंकि जो दो ही सूत्र होते, तो महाभाष्यकार योगविभाग क्यों करते"] ॥ सं० ॥

वि० समास को प्राप्त हों वह [समास] अव्ययीभाव सं० हो। जैसे—अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति=अग्निमभि। प्रत्यग्नि=अग्निं प्रति। आभिमुख्ये किम्? देशं प्रति गतः।

२४–अनुर्यत्समया ॥ अ० २। १। १४॥

समया नाम समीपता। जिसके समीप को अनु कहता हो उसी लक्षणवाची सुबन्त के साथ [अनु] वि० समास पावे सो [समास] अव्ययीभावसंज्ञक हो। जैसे—अनुवनमशनिर्गतः। अनुवृक्षम्। अनुरिति किम्? वनं समया। यत्समयेति किम्? वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्।

२५–यस्य चायामः ॥ अ० २। १। १५॥

आयामो दैर्घ्यम्। जिसके लम्बेपन को अनु कहता हो उसी लक्षणवाची सुबन्त के सङ्ग [अनु] वि० समास पावे सो [समास] अव्ययीभावसंज्ञक हो। अनुगङ्गं वाराणसी। अनुयमुनम्मथुरा। यमुनाऽऽयामेन मथुराऽऽयामो लक्ष्यते। आयाम इति किम्? वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्।

२६–तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च ॥ अ० २। १। १६॥

जो तिष्ठद्गु आदि शब्द निपातन किये हैं वे अव्ययीभाव-संज्ञक हों। तिष्ठद्गुकालविशेषः। जैसे—तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय, स तिष्ठद्गु कालः। वहद्गु। आयतीगवम्।[1]

---

१. [वा० तिष्ठद्गु कालविशेषे ॥ महा० २। पा० १। आ० २॥ तिष्ठद्गु, वहद्गु, आयतीगवम्, इति त्रयः शब्दाः कालविशेषे निपातिता इति विज्ञेयम् ॥ इस सूत्र में चकार निश्चयार्थक है। तिष्ठद्गु आदि निपातों

२७–वा०–खलेयवादीनि प्रथमान्तान्यन्यपदार्थे समस्यन्त इति वक्तव्यम् ।[1]

[अर्थात् खलेयवादि जो प्रातिपदिक हैं उन प्रथमान्तों का [काल में और] अन्यपदार्थ में समास समझना चाहिये] ।

—खलेयवम् । खलेबुसम् । लूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् [पूयमानयवम् । संहृतयवम् । संहृयमाणयवम्] । संह्लितबुसम् । संह्लियमाणबुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्षमम् । दुष्षमम् । अपरसमम् । [आयतीसमम्] प्राह्लम् । प्ररथम् । प्रमृगम् । प्रदक्षिणम् । अपरदक्षिणम् । संप्रति । असंप्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् ।

इच् कर्मव्यतिहारे ।। [कर्मव्यतिहार अर्थात् परस्पर

की ही अव्ययीभाव संज्ञा हो । अतः "परमं तिष्ठद्गु" यहां परम शब्द का समास नहीं हुआ] ।। सं० ।।

१. [खलेयवादि जो प्रातिपदिक हैं उन प्रथमान्तों का अन्यपदार्थ में अर्थात् काल के अतिरिक्त स्वामी आदि अर्थ में भी समास समझना चाहिए और वे समस्त प्रथमान्त ही प्रयुक्त हों, यह इस वार्त्तिक का प्रयोजन है ।

काल में जैसे—खले यवा बुसानि च यस्मिन्काले, स कालः 'खलेयवं' 'खलेबुसम्' लूना यवा यस्मिन्काले; स 'लूनयवम्' । अन्यत्र भी जैसे—खले यवा बुसानि च सन्त्यस्य, स 'खलेयवं' 'खलेबुसं' पुरुषः । अर्थात् जिसके खलिहान में जौ या बुस हों इसी प्रकार 'लूनयवं' 'लूयमानयर' इत्यादि शब्द भी जानने चाहिये] ।। सं० ।।

प्रहरणादि अर्थ में समासान्त इच्[1] प्रत्ययान्त शब्द भी अव्ययीभावसंज्ञक हों, फिर अव्ययीभावश्च ॥ अ० १ । १ । ४० ॥ इससे अव्ययसंज्ञक होकर विभक्ति का लुक् हो जाता है; जैसे—दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं वृत्तं=] "दण्डादण्डि"। मुसलामुसलि। नखानखि। [अत्र "अन्येषामपि दृश्यते" अ० ६ । ३ । १३७ ॥ इति दीर्घः] ।

२८-पारे मध्ये षष्ठ्या वा ॥ अ० २ । १ । १७ ॥

जो पार और मध्य शब्द षष्ठ्यन्त सुबन्त के सङ्ग वि० समास पावें सो समास अव्ययीभावसंज्ञक हो। और [अव्ययीभाव समास पक्ष में इन दोनों शब्दों को] एकारान्त निपातन भी किया है। जैसे—पारं गङ्गायाः=पारे गङ्गम्। मध्यं गङ्गायाः=मध्ये गङ्गम्। षष्ठीसमास पक्षे—गङ्गापारम्। गङ्गामध्यम्। यहां फिर "वा" ग्रहण का प्रयोजन यह है कि पक्ष में षष्ठी समास हो के वाक्य भी रह जावे। जैसे—गङ्गायाः पारम्। गङ्गाया मध्यम्।

---

१. [कर्मव्यतिहार अर्थ में समासान्त इच् प्रत्यय (अ० ५।४।१२७-१२८) होता है और इच् प्रत्ययान्त जो शब्द हैं वे तिष्ठद्गु प्रभृतिगण गणपाठ सूत्र ७) में होने से अव्ययसंज्ञक हो जाते हैं। इसलिये इस अव्ययीभावप्रकरण में तिष्ठद्गुप्रभृति गण के साथ इसका उल्लेख किया है। वैसे यह सूत्र पृथक् रूप से आगे बहुव्रीहि समासाधिकार में लिखा जावेगा।

पूर्व मुद्रित संस्करणों में जो इसे वार्त्तिक करके लिखा है वह लेखकादि की भूल प्रतीत होती है] ॥ सं० ॥

२९—संख्या वंश्येन[1] ॥ अ० २ । १ । १८ ॥

जो वंश्यवाची सुबन्त के साथ संख्यावाची सुबन्त वि० समास पावे सो अव्ययीभावसंज्ञक हो, जैसे—द्वौ मुनी व्याकरणस्य वंश्यौ । "द्विमुनि" व्याकरणस्य[2] । "त्रिमुनि" व्याकरणस्य[3] ।

३०—नदीभिश्च ॥ अ० २ । १ । १९ ॥

जो संख्यावाची सुबन्त नदीवाची सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त वि० होवें सो० । जैसे—सप्तगङ्गम् । द्वियमुनम् । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । [यहां "नदीभिः संख्यायाः समाहारेऽव्ययीभावो वक्तव्यः" इस वा० से समाहार अर्थ में यह समास समझना चाहिये, इसलिये एकनदं ऐसा प्रयोग नहीं होता] ।

३१—अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ॥ अ० ५ । ४ । १०७ ॥

अव्ययीभाव समास में शरत् आदि प्रातिपदिकों से टच् प्रत्यय होवे । जैसे—शरदः समीपम्=उपशरदम् । प्रतिशरदम् । उपविपाशम् । प्रतिविपाशम् । अव्ययीभाव इति किम् ? परमशरत् ।

३२—अनश्च ॥ अ० ५ । ४ । १०८ ॥

---

१. [वंशो द्विधा—विद्यया जन्मना च । तत्र भवो वंश्यः, तेन । दिगादित्वाद् (अ० ४ । ३ । ५४) यत्] ॥ सं० ॥

२. दो मुनि अर्थात् पाणिनि और पतञ्जलि । [?]

३. तीन मुनि अर्थात् पाणिनि, पतञ्जलि और शाकटायन । [?]

अन् जिसके अन्त में हो उस सुबन्त से टच् प्रत्यय हो। जैसे राज्ञः समीपं=उपराजम्। आत्मनि अधि इति=अध्यात्मम्। प्रत्यात्मम्।

३३—नपुंसकादन्यतरस्याम् ॥ अ० ५। ४। १०९ ॥

अन्नन्त नपुंसक सुबन्त से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० [से] हो। चर्म चर्म प्रति इति=प्रतिचर्मम्। प्रतिचर्म। उपचर्मम्। उपचर्म।

३४—नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ॥ अ० ५। ४। ११० ॥

नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी, ये तीन प्रातिपदिक जिनके अन्त में हों उन समस्त समुदायों से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० हो। जैसे—नद्याः समीपं=उपनदम्। उपनदि। उपपौर्णमासम्। उपपौर्णमासि। उपाग्रहायणम्। उपाग्रहायणि।

३५—झयः ॥ अ० ५। ४। १११ ॥

झय् प्रत्याहार जिसके अन्त में हो उस सुबन्त से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० [से] हो। जैसे—उपसमिधम्। उपसमित्। उपदृषदम्। उपदृषत्। अतिक्षुधम्। अतिक्षुत्।

३६—गिरेश्च सेनकस्य ॥ अ० ५। ४। ११२ ॥

सेनक आचार्य के मत में गिरि शब्दान्त प्रातिपदिक से अव्ययीभाव समास में समासान्त टच् प्रत्यय वि० [से] हो। जैसे। अन्तर्गिरम्। अन्तर्गिरि। उपगिरम्। उपगिरि। अव्ययीभाव समास में इतने समासान्त प्रत्यय होते हैं।

३७—अन्यपदार्थे च संज्ञायाम् ।। अ० २ । १ । २० ।।

जो संज्ञा हो तो अन्यपदार्थ में वर्त्तमान जो सुबन्त सो नदीवाची ["नदीभिः" इत्यनुवर्त्तते] सुबन्त के साथ समास पावे । जैसे—[उन्मत्ता गङ्गा यस्मिन् देशे =] "उन्मत्तगङ्गं" नाम देशः । लोहितगङ्गं नाम देशः । कृष्णगङ्गं नाम देशः । शनैर्गङ्गं नाम देशः । अन्यपदार्थ इति किम् ? कृष्णवेणी । संज्ञायामिति किम् ? शीघ्रगङ्गो देशः ।

।। इत्यव्ययीभावः समासः समाप्तः ।।

अथ तत्पुरुषः ।।

३८—तत्पुरुषः ।। अ० २ । १ । २१ ।।

यहां से लेके बहुव्रीहि समास से पूर्व-पूर्व तत्पुरुष समास का अधिकार है ।[1]

उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः ।।

तत्पुरुष समास में उत्तरपद का अर्थ प्रधान होता है ।

३९—द्विगुश्च ।। अ० २ । १ । २२ ।।

द्विगु समास भी तत्पुरुषसंज्ञक होता है "द्विगोस्तत्पुरुषत्वे नमासान्ताः प्रयोजनम् ।"

४०—समासान्ताः ।। अ० ५ । ४ । ६८ ।।

अब जो प्रत्यय कहेंगे वे समासान्त होंगे अर्थात् उनका समास के ही साथ ग्रहण किया जायगा । जैसे—पञ्चराजी ।

---

१. ["शेषो बहुव्रीहिः" (अ० २ । २ । २३) ।। इस सूत्र तक इसका अधिकार जानना चाहिये] ।। सं० ।।

दशराजी । पञ्चराजम् । दशराजम् । द्व्यहः । त्र्यहः । पञ्चगवम् । दशगवम् ।

४१–गोरतद्धितलुकि ॥ अ० ५ । ४ । ९२ ॥

तद्धितलुक् को वर्ज के गो शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे—परमगवः । उत्तमगवः । पञ्चगवम् । दशगवम् । अतद्धितलुकीति किम् ? पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः= पञ्चगुः । दशगुः । तद्धितग्रहणेन किम् ? सुब्लुकि प्रतिषेधो माभूत् । जैसे—राजगवमिच्छति राजगवीयति । लुग्ग्रहणात्किम् ? तद्धित एव माभूत् । पञ्चभ्यो गोभ्य आगतं पञ्चगवरूप्यम् । पञ्चगवमयम् ।

४२–ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे[1] ॥ अ० ५ । ४ । ७४ ॥

जो अक्षसम्बन्धी अर्थ न हो तो ऋक्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् ये जिनके अन्त में हों उन प्रातिपदिकों से समासान्त अकार प्रत्यय हो । जैसे [ऋक्-] अविद्यमाना ऋक् यस्मिन् सोऽनृचो ब्राह्मणः । बह्वृचः । [पुर्-] ब्राह्मणपुरम् । नान्दीपुरम् [अप्-] द्विर्गता आपो यस्मिन् तद्=द्वीपम् । अन्तरीपम् । समीपम् । [धुर्] राज्ञः धूः=राजधुरा । महाधुरा । [पथिन्—] देवपथः । जलपथः । अनक्ष इति किम् ? अक्षस्य धूः=अक्षधूः । दृढधूरक्षः ।

४६–अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ॥ अ० ५ । ४ । ७५ ॥

जो प्रति, अनु और अव पूर्वक सामन् और लोमन् प्रातिपदिक हों तो उनसे समासान्त अच् प्रत्यय हो । प्रतिसामम् ।

---

१. [अ अनक्षे, इति ज्छेदः ऋगाद्यन्तातः, समासान्तः, अः, अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न] ॥ सं० ॥

अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् । अवलोमम् ।

४४—अक्ष्णोऽदर्शनात् ॥ अ० ५ । ४ । ७६ ॥

दर्शन भिन्न अर्थ में अक्षि शब्द से समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—पुष्कराक्षम् । उदुम्बराक्षः । अदर्शनादिति । किम् । ब्राह्मणाक्षि ।

४५—ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ॥ अ० ५ । ४ । ७८ ॥

ब्रह्मन् और हस्तिन् शब्द से परे जो [प्रकाशवाचक] वर्चस् [शब्द] उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—ब्रह्मणो वर्चः "ब्रह्मवर्चसम्" । हस्तिनो वर्चः "हस्तिवर्चसम्" ।

४६—वा०—पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

[पल्य और राज शब्द से परे जो वर्चस् शब्द उससे भी समासान्त अच् प्रत्यय हो] पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ।

४७—अवसमन्धेभ्यस्तमसः ॥ अ० ५ । ४ । ७९ ॥

अव, सम् और अन्ध शब्द से परे जो तमस् [शब्द] उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—अवगतं नाम प्राप्तं तमः "अवतमसम्" । सम्यक्तमः "सन्तमसम्" । अन्धन्तमः "अन्धतमसम्" [महत्तम इत्यर्थः] ।

४८—श्वसो वसीयः श्रेयसः ॥ अ० ५ । ४ । ८० ॥

जो श्वस् शब्द से परे वसीयस् और श्रेयस् शब्द हों तो उनमें समासान्त अच् प्रत्यय हों । श्वोवसीयसम् । श्वःश्रेयसम्[१] ।

---

१. [श्वः श्रेयसं ते भूयात् = शोभनं श्रेयस्ते भूयादित्यर्थः । श्वोवसीयसमित्यस्यैव पर्यायः । इति काशिकायाम्] ॥ सं० ॥

४९–अन्ववतप्ताद्रहसः ॥ अ० ५ । ४ । ८१ ॥

[अनु, अव और तप्त शब्द से परे जो रहस् शब्द उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—]

अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ।

५०–प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ॥ अ० ५ । ४ । ८२ ॥

जो प्रति से परे सप्तमीस्थ उरस् उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—उरसि प्रति "प्रत्युरसम्" । सप्तमीस्थादिति किम् ? प्रतिगतमुरः "प्रत्युरः" ।

५१–अनुगवमायामे ॥ अ० ५ । ४ । ८३ ॥

यहां आयाम [दीर्घतावाच्य] अर्थ में अनुगव अच् प्रत्ययान्त निपातन किया है । गोरनु=अनुगवम् यानम् । आयाम इति किम् ? गवां पश्चादनुगु ।

५२–द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ॥ अ० ५ । ४ । ८४ ॥

जो वेदि के प्रमाण से अधिक द्विगुणः वा त्रिगुण वेदि हो सो कहिये द्विस्तावा । त्रिस्तावा [वेदिः] । ये वेदि के नाम हैं । [वेदिरिति किम् ? द्विस्तावती त्रिस्तावती रज्जुः] ।

५३–उपसर्गादध्वनः ॥ अ० ५ । ४ । ८५ ॥

उपसर्ग से परे जो अध्वन् उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । जैसे—प्रगतोऽध्वानम्=प्राध्वो रथः । प्राध्वं शकटम् । निरध्वम् । प्रत्यध्वम् । उपसर्गादिति किम् ? परमाध्वा । उत्तमाध्वा ।

५४–तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादे ॥ अ० ५ । ४ । ८६ ॥

जो तत्पुरुष समास में [संख्यादि तथा अव्ययादि] अङ्गुलि शब्दान्त हो तो उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । संख्यादि जैसे—द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य तद् "द्व्यङ्गुलम्" । त्र्यङ्गुलम् । यहां तद्धितार्थ में समास और मात्रच् प्रत्यय का लोप[1] जानना । अव्ययादि-निर्गतमङ्गुलिभ्यो "निरङ्गुलम् । अत्यङ्गुलम् । तत्पुरुषस्येति किम् ? पञ्चाङ्गुलिः । अत्यङ्गुलिः पुरुषः । [इस अष्टाध्यायीस्थ समासान्त प्रकरण में] (द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्-समाहारे) [अ० ५ । ४ । १०६] इस सूत्र से पूर्व-पूर्व तत्पुरुष का अधिकार जानना ।

५५—अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ॥ अ० ५ । ४ । ८७ ॥

अहन्, सर्व, एकदेश वाची, संख्यात और पुण्य, चकार से संख्या और अव्यय, इनमें भी उत्तर जो रात्रि उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थं[2] द्रष्टव्यम् । अहश्च रात्रिश्च= अहोरात्रः । [सर्वा रात्रिः=सर्वरात्रः] एकदेशे-[पूर्वं रात्रेः=] पूर्वरात्रः । अपररात्रः । पूर्वापराधरेति समासः । संख्याता रात्रिः= संख्यातरात्रः । पुण्या रात्रिः=पुण्यरात्रः । द्वे रात्री समाहृते= द्विरात्रः । [अव्यय से—अतिक्रान्तो रात्रिम्+अतिरात्रः] ।

५६—अह्नोऽह्न एतेभ्यः ॥ अ० ५ । ४ । ८८ ॥

(एतेभ्यः) अर्थात् संख्या, अव्यय, और सर्व, एकदेश इत्यादि शब्दों से परे जो अहन् उसको अह्न आदेश हो । संख्यायास्तावत् । जैसे—द्वयोरह्नोर्भवो=द्व्यह्नः । त्र्यह्नः । अहरति-

---

१. [वा०—प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम् ॥ अ० ६ । २ । १२ ॥ इस वार्त्तिक से लोप]

२. [वार्तिकमिदम् । महा० ५ । ४ । १] ॥ सं० ॥

क्रान्तः "अत्यह्नः"। निरह्नः। सर्वं च तदहश्चः "सर्वाह्नः"। पूर्वञ्च तदहश्च "पूर्वाह्नः"। अपराह्नः। संख्याताह्नः। [पुण्य-शब्दात्प्रतिषेधं वक्ष्यति]।

५७—न संख्यादेः समाहारे ॥ अ० ५। ४। ८९॥

जो समाहार [एकत्र अर्थ] में वर्त्तमान और संख्यादि तत्पुरुष उससे परे अहन् शब्द को अह्न आदेश न हो। जैसे—द्वे अहनी समाहृते "द्व्यहः"। त्र्यहः, इत्यादि। समाहारे इति किम् ? द्वयोरह्नोर्भवः "द्व्यह्नः"। त्र्यह्नः। तद्धितार्थ इति समासे कृतेऽण आगतस्य द्विगोरिति लुक्।

५८—उत्तमैकाभ्यां च ॥ अ० ५। ४। ९०॥

उत्तम अर्थात् पुण्य, और एक, इनसे परे अहन् को अह्न आदेश न हो। जैसे—पुण्याहः। एकाहः।

५९—राजाहस्सखिभ्यष्टच् ॥ अ० ५। ४। ९१॥

राजन्, अहन् और सखि, इन प्रातिपदिकों से परे समासान्त टच् प्रत्यय हो। जैसे—महाराजः। मद्रराजः। परमाहः। उत्तमाहः। देवसखः। राजसखः। ब्रह्मसखः।

६०—अग्राख्यायामुरसः ॥ अ० ५। ४। ९३॥

अग्राख्या[1] अर्थ में उरस् शब्दान्त तत्पुरुष समास से टच् प्रत्यय हो। जैसे—अश्वानामुरः=अश्वोरसम् [मुख्योऽश्व इत्यर्थः] हस्त्युरसम्। अग्राख्यायामिति किम् ? देवदत्तस्योरः=देवदत्तोरः।

---

१. [अग्रं प्रधानमुच्यते। यथा शरीरावयवानामुच्यते उरः प्रधानम्। एवमन्योऽपि प्रधानभूत उरश्शब्देनोच्यते। अथवा अग्रेभवोऽग्र्यो मुख्यः, तस्याख्यायामित्यर्थः]॥ सं०॥

६१—अनोऽश्मायस्सरसां जातिसञ्ज्ञयोः ॥ अ० ५ । ४ । ९४ ॥

जाति और संज्ञा के विषय में अनस्, अश्मन्, और सरस् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे—उपानसमिति जातिः । महानसमिति संज्ञा । अमृताश्ममिति जातिः । पिण्डाश्म इति संज्ञा । कालायसमिति जातिः । लोहितायसमिति संज्ञा । मण्डूकसरसमिति जातिः । जलसरसमिति संज्ञा । जातिसंज्ञयोरिति किम् ? सदनः । सदश्मा । उत्तमायः । सत्सरः ।

६२—ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ॥ अ० ५ । ४ । ९५ ॥

ग्राम और कौट से उत्तर जो तक्षन् [शब्दान्त तत्पुरुष] उससे टच् प्रत्यय हो । ग्रामस्य तक्षा=ग्रामतक्षः । कौटस्य तक्षाः= कौटतक्षः । ग्रामकौटाभ्यां चेति किम् ? राज्ञस्तक्षा ।

६३—अतेः शुनः ॥ अ० ५ । ४ । ९६ ॥

अति से उत्तर श्वन् तदन्त जो तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो जैसे—अतिकान्तः श्वानम् = "अतिश्वो" वराहः । जववानित्यर्थः अतिश्वः सेवकः । सुष्ठु स्वामिभक्त इत्यर्थः ।

६४—उपमानादप्राणिषु ॥ अ० ५ । ४ । ९७ ॥

प्राणी भिन्न अर्थ में उपमानवाची श्वन् शब्द से टच् प्रत्यय हो जैसे—आकर्षः श्वेन=आकर्षश्वः । फलकश्वः । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः [अ० २ । १ । ५५] । उपमानादिति किम् ? नश्वा= अश्वा[1] लोष्ठः । अप्राणिष्विति किम् ? वानरः श्वेव=वानरश्वा ।

१. [अश्वेति तु नञस्तत्पुरुषादित्यनेन (अ० ५ । ४ । ७१) समासान्तानर्हमिदं पदम्, तस्मान्निः श्वा लोष्ठ इति प्रत्युदाहर्त्तव्यम् ॥ सं० ॥

६५—उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ।। अ० ५ । ४ । ९८ ॥

उत्तर, मृग, पूर्व और चकार से उपमानपूर्वक जो सक्थिन् तदन्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । उमान । फलकमिव सक्थि=फलकसक्थम ।

६६—नावो द्विगोः ।। अ० ५ । ४ । ९९ ॥

नौ शब्दान्त द्विगु से समासान्त टच् प्रत्यय हो । द्वे नावौ समाहृते=द्विनावम्[१] । त्रिनावम् । द्वे नावौ धनमस्य=द्विनावधनः[१] । पञ्चनावप्रियः । द्वाभ्यान्नौभ्यामागतं=द्विनावरूप्यम्[१] द्विनावमयम् । द्विगोरिति किम् ? राजनौः । अतद्धितलुकीत्येव । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः=पञ्चनौः । दशनौः ।

६७—अर्द्धाच्च ।। अ० ५ । ४ । १०० ॥

जो अर्द्ध से परे नौ शब्द हो तो उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो । अर्द्धं नावः "अर्द्धनावम्"[२] ।

६८—खार्य्याः प्राचाम् ।। अ० ५ । ४ । १०१ ॥

प्राचीन आचार्यों के मत में अर्द्ध से उत्तर खारी शब्द और खारी शब्दान्त द्विगु इनसे समासान्त टच् प्रत्यय हो । अर्द्धं खार्याः=अर्द्धखारम्[२] । अर्द्धखारी । द्वे खार्य्यौ समाहृते=द्विखारम् । द्विखारि । त्रिखारम् । त्रिखारि ।

---

१. [इन उदाहरणों में क्रमशः समाहार, उत्तरपद और तद्धितार्थ में नौ शब्दान्त द्विगु से समासान्त टच् प्रत्यय हुआ है]

२. [अर्द्धं नपुंसकमिति समासः [अ० २ । २ । २ ॥], परवल्लिङ्गं न भवति लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य] ॥ सं० ॥

६९—द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ॥ अ० ५ । ४ । १०२ ॥

द्वि और त्रि शब्द से परे जो अञ्जलि उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो । द्वावञ्जली समाहृतौ=द्व्यञ्जलम् । त्र्यञ्जलम् । द्विगोरित्येव । द्वयोरञ्जलिः=द्व्यञ्जलिः । अतद्धितलुकीत्येव । द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतः=द्व्यञ्जलिः । त्र्यञ्जलिः । प्राचामित्येव । द्व्यञ्जलिप्रियः ।

७०—अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि ॥ अ० ५ । ४ । १०३ ॥

नपुंसकलिङ्गवाची जो अनन्त और असन्त तत्पुरुष उससे समासान्त टच् प्रत्यय हो वेद के विषय में । हस्तिचर्मे जुहोति । वृषभचर्म्मेऽभिषिञ्चति । असन्तात् । देवच्छन्दसानि । मनुष्यच्छन्दसानि । अनसन्तादिति किम् ? बिल्वदारु जुहोति । नपुंसकादिति किम् ? सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसम् ।

७१—वा०—अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि वा वचनम् ॥

ब्रह्मसाम । देवच्छन्दः ब्रह्मसामम् देवच्छन्दसम् ।

७२—ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ॥ अ० ५ । ४ । १०४ ॥

ब्रह्मन् शब्दान्त तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो जानपद की आख्या अर्थ में । सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा "सुराष्ट्रब्रह्मः" । अवन्तिब्रह्मः । पञ्चालब्रह्मः । जानपदाख्यायामिति किम् ? देवब्रह्मा नारदः ।

७३—कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ अ० ५ । ४ । १०५ ॥

कु और महत् से परे जो ब्रह्मन् शब्द सो अन्त में जिसके उस तत्पुरुष से समासान्त टच् प्रत्यय हो । कुब्रह्मः । कुब्रह्मा । महाब्रह्मः । महाब्रह्मा । ब्राह्मणपर्यायो ब्रह्मन्शब्दः ।

[द्वितीयातत्पुरुष]

७४–द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ॥

अ० २ । १ । २३ ॥

द्वितीयान्त समर्थ जो सुबन्त सो श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न इन सुबन्तों के सङ्ग वि० समास पावे। सो समास तत्पुरुषसंज्ञक हो।[1]

श्रित—कष्टं श्रितः "कष्टश्रितः"। नरकश्रितः।

अतीत—कान्तारमतीतः "कान्तारातीतः"।

पतित—नरकपतितः "नरकपतितः"।

गत—ग्रामं गतः "ग्रामगतः"।

अत्यस्त—व्यसनमत्यस्तः "व्यसनात्यस्तः"।

प्राप्त—सुखं प्राप्तः "सुखप्राप्तः"।

आपन्न—सुखमापन्नः "सुखापन्नः"।

समर्थग्रहणं किमर्थम् ? पश्य देवदत्त कष्टं श्रितो विष्णुमित्रो गुरुकुलम्। यहां कष्ट शब्द का सम्बन्ध पश्य क्रिया के साथ है इसलिये समास नहीं होता।

७५–वा०–श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसङ्ख्यानम् ॥

ग्रामं गमी "ग्रामगमी"। ग्रामं गामी "ग्रामगामी"। ओदनं बुभुक्षुः "ओदनबुभुक्षुः"।

७६–स्वयं क्तेन ॥ अ० २ । १ । २४ ॥

---

१. यहां से आगे द्वितीया तत्पुरुष समास चला।

"स्वयं" सुबन्त क्तान्त के सङ्ग वि० जो समास हो सो समास तत्पुरुषसंज्ञक हो। जैसे—स्वयंधौतौ पादौ। स्वयंविलीनमाज्यम्। ऐकपद्यमैकस्वर्यं [ऐकविभक्तित्वं[1]] च समासत्वाद् भवति॥

७७—खट्वा क्षेपे॥ अ० २। १। २५॥

क्षेप नाम निन्दा का है। [द्वितीया इत्यनुवर्त्तते, 'क्तेन' इत्यपि] द्वितीयान्त खट्वा सुबन्त, के सङ्ग वि० समास को प्राप्त हो सो समास तत्पुरुषसंज्ञक हो [क्षेपे अर्थात् निन्दा अर्थ में[1]]। जैसे—खट्वारोहणं चेह विमार्गप्रस्थानस्योपलक्षणम्। सर्व एवायमविनीतः "खट्वारूढ" इत्युच्यते। खट्वारूढो जाल्मः। खट्वाप्लुतः। अपथप्रस्थित इत्यर्थः। क्षेप इति किम्? खट्वामारूढः।

७८—सामि॥ अ० २। १। २६॥

यह "सामि" अव्यय अर्द्ध का पर्याय है ['क्तेन' इत्यनुवर्त्तते। सामि जो शब्द है वह क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के सङ्ग वि० से समास

---

१. महर्षि स्वरचितभाष्य में लिखते हैं:—

"स्वयं" जो अव्यय है वह [क्तेन] क्त प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हो। सो समास तत्पुरुषसंज्ञक हो। यहां समास का प्रयोजन यह है कि एक पद, एकस्वर और [अन्यत्र] एक विभक्ति होना [भी] अष्टा० भाष्य० भाग १ पृ० १९२॥

२. "अध्ययनसमाप्तिमकृत्वा गुरोराज्ञां त्यक्त्वा च यो गृहस्थाश्रममाविशति, तस्य "खट्वारूढः" इति नाम। क्षेपस्तस्य निन्दा, स एव समासार्थः।" अष्टा० भा० भाग १ पृ० १९२॥

पावे समास तत्पुरुषसंज्ञक हो]। जैसे—सामिकृतम्। सामिपीतम्। सामिभुक्तम्।

७९–कालाः ॥ अ० २।१।२७॥

जो द्वितीयान्त कालवाची सुबन्त शब्द का क्तान्त सुबन्त के साथ समास वि० पावे सो तत्पुरुषसंज्ञक हो। जैसे—

षण्मुहूर्त्ताश्चराचराः ते कदाचिदहर्गच्छन्ति। कदाचिद्रात्रिम्[1]।

[महा० अ० २ पा० १ आ० २]

अहरतिसृता मुहूर्त्ताः "अहस्संक्रान्ता"। रात्र्यतिसृता मुहूर्त्ताः। "रात्रिसंक्रान्ताः"। मासप्रमितश्चन्द्रमाः। मासं प्रमातुमारब्धः प्रतिपच्चन्द्रमा इत्यर्थः।

८०–अत्यन्तसंयोगे च ॥ अ० २।१।२८॥

द्वितीयान्त कालवाची सुबन्त के सङ्ग [वि०] समास पावे अत्यन्त संयोग अर्थ में। अत्यन्त संयोग नाम सर्वसंयोग का है। जैसे—मुहूर्त्तं सुखम्" [जब तक एक मुहूर्त्त बीता तब तक सुख भोगा] सर्वरात्रकल्याणी। सर्वरात्रशोभना।

---

१. "ज्योतिषविद्या में ६: मुहूर्त्त विचरने वाले हैं वे, उत्तरायण जब सूर्य होता है, तब दिन में आते हैं और दक्षिणायन सूर्य में रात्रि में आते हैं सो ६: मुहूर्त्तों और दिन रात्रि का अत्यन्त संयोग नहीं, इससे आगे के सूत्र [अत्यन्तसंयोगे च] से सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये इस सूत्र का आरम्भ किया है।"—अ० भा० भाग १ पृ० १९३॥

[तृतीया तत्पुरुष]

८१–तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन[1] ॥ अ० २ । १ । २९ ॥

जो तृतीयान्त सुबन्त (तत्कृतेन) अर्थात् तृतीयार्थकृत गुणवचन के साथ [विकल्प से] समास हो । तथा तृतीयान्त सुबन्त, अर्थ सुबन्त के सङ्ग भी [विकल्प] समास हो सो तृतीया तत्पुरुष संज्ञक हो । उपादानेन विकलः "उपादानविकलः" । किरिणा काणः

---

१. यहां से आगे तृतीया तत्पुरुष समास का आरम्भ जानो ॥ [गुणवचनेन = अत्र वचनग्रहणस्यैतत् प्रयोजनं = गुणमुक्तवता द्रव्येण समासो यथा स्यात् ।

इस सूत्र में महाभाष्यकार ने योग विभाग किया है । अर्थात् 'अर्थेन' इतना पृथक् किया है और "तत्कृतेन" इसको 'गुणवचनेन' का विशेषण ठहराया है । जो द्रव्य गुण को कह चुका हो, उसको गुणवचन कहते हैं ।

तृतीयान्त से जो किया हो वह 'तत्कृत' कहावे । तृतीयान्त जो सुबन्त है, वह तत्कृत गुणवचन, और अर्थ–शब्द के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हो । वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो [जैसे—] ।

शङ्कुलया खण्डः [शङ्कुलया कृतः खण्डः इति] = शङ्कुलाखण्डः । यहां खण्ड-शब्द गुणवचन है वह शङ्कुला से किया जाता है इससे खण्ड के साथ शङ्कुला का समास हुआ है ।

अर्थ शब्द के साथ "धान्येन अर्थः" = धान्यार्थः वसनार्थः ।

'तत्कृतेन इति किम् ? कर्णेन बधिरः । अत्र कर्णकृतं बधिरत्वं नास्तीति समासो न भवति ॥ इस प्रकार श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने अपने भाष्य में इसकी सुविस्तृत व्याख्या की है । विशेष वहीं देखें] अष्टा० भाष्य० भाग १ पृ० १९४–९५ ॥ सं० ॥

"किरिकाणः" । शङ्कुलया खण्डः "शङ्कुलाखण्डः" । धान्येनार्थः "धान्यार्थः" । तत्कृतेनेति किम् ? अक्ष्णा काणः । गुणवचनेनेति किम् ? गोभिर्वपावान्[1] । समर्थग्रहणं किम् ? त्वं तिष्ठ शङ्कुलया, खण्डो धावति मुसलेन ।

८२–पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ॥

अ० २ । १ । ३० ॥

तृतीयान्त सुबन्त का पूर्व, सदृश, सम, ऊनार्थ,[2] कलह, निपुण, मिश्र और श्लक्ष्ण [इन आठ] सुबन्तों के साथ [वि०] समास हो सो तृतीया तत्पुरुष हो[3] । जैसे— मासेन पूर्वः "मासपूर्वः" । संवत्सरपूर्वः । पित्रा सदृशः "पितृसदृशः" पित्रा समः "पितृसमः" । माषेणोनम् "माषोनम्" । कार्षापणोनम् । माषविकलम् । कार्षापणविकलम् । असिकलहः । वाक्कलहः । वाग्निपुणः । शास्त्रनिपुणः । गुडमिश्रः । तिलमिश्रः । [आचारेण श्लक्ष्णः] आचारश्लक्ष्णः ।

८३–वा०–पूर्वादिष्ववरस्योपसंख्यानम् ॥

[पूर्वादिकों में अवर-शब्द भी समझना अर्थात् तृतीयान्त शब्द का समास अवर शब्द के साथ भी हो] ।

मासेनावरः "मासावर" । संवत्सरावरः ।

---

१. [वपावच्छब्दस्तु सर्वदा वपासम्बन्धविशिष्टं द्रव्यमाहेति नासौ गुणवचनः] ॥ सं. ॥

२. ऊनार्थ–"ऊन शब्द के अर्थ में जो शब्द हैं वे भी समझने चाहिए । एकेन ऊनं = एकोनम् [एकेन न्यूनं =] एकन्यूनम् ।

३. इस तृतीया तत्पुरुष समास का विशेष प्रयोजन यह है कि 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीया० [अ० ६ । २ । २ ॥] इस सूत्र से पूर्वपद प्रकृतिस्वर होना ॥" अ० भा० भा० १, पृ० १६०-१९६ ॥

८४—कर्तृकरणे कृता बहुलम्[1] ॥ अ० २ । १ । ३१ ॥

कर्त्ता और करण अर्थ में जो तृतीयान्त सुबन्त सो कृदन्त के साथ कहीं-कहीं समास को प्राप्त होते हैं। वह तृतीया तत्पुरुष समास होता है। जैसे—[कर्त्तावाची में] अहिना दष्टः=अहिदष्टः। देवदत्तेन कृतम्=देवदत्तकृतम्। [करणवाची में—जैसे] नखैर्निर्भिन्नः=नखनिर्भिन्नः। कर्तृकरणे किम्? भिक्षाभिरुषितः[2]। बहुलग्रहणं किम्? दात्रेण लूनवान्। परशुना छिन्न [वान्]। इह समासो न भवति। इह च भवति। पादहारको, गलेचोपकः।

८५—कृत्यैरधिकार्थवचने ॥ अ० २ । १ । ३२ ॥

कर्त्ता और करण कारक में जो तृतीयान्त सो कृत्य प्रत्ययान्त[3] सुबन्त के सङ्ग वि० समास को प्राप्त हो, अधिकार्थ वचन हो तो। [पदार्थों के अधिकतया] स्तुति निन्दायुक्त वचन को अधिकार्थवचन कहते हैं। वह तृतीया तत्पुरुष समास कहाता है। जैसे—कर्त्ता—काकपेया नदी[4]। श्वलेह्यः कूपः। करण—वाष्पच्छेद्यानि

---

१. "महाविभाषाऽनुवर्त्तते, पुनर्बहुलग्रहणस्यैतत् प्रयोजनम्—महाविभाषया वाक्यमेव भवति, बहुलेन तु क्वचित् समासोऽपि न भवति। दात्रेण लूनवान्। परशुना छिन्नवान्। अत्र समास एव न भवति"।

अष्टा० भाष्य, भाग १ पृ० १९५-१९६ ॥

२. [यहां हेतु अर्थ में तृतीया है। इससे समास नहीं हुआ]।

३. कृत्यसंज्ञक प्रत्यय कृदन्त के अन्तर्गत होने से पूर्व सूत्र के "कृता" इस वचन से ही गृहीत हो जाते फिर इस सूत्र का प्रयोजन यह है कि यहां बहुल ग्रहण नहीं है।

४. काकैः पेया="काकपेया नदी"। यहां कर्तृवाची तृतीयान्त सुबन्त "काक" के साथ कृत्यप्रत्ययान्त "पेय" या समास हुआ है। "इस नदी का जल कौओं के पीने के योग्य है", अर्थात् अत्यन्त बुरा है॥

तृणानि[1] । घनाघात्यो [घनघात्यो] गुणः । कषताड्यो दुष्टः ॥

८६—वा०—कृत्यग्रहणे यण्ण्यतोर्ग्रहणम् ॥

इह माभूत् । काकैः पातव्या इति ॥

८७—अन्नेन व्यञ्जनम् ॥ अ० २ । १ । ३३ ॥

जो तृतीयान्त व्यञ्जनवाची सुबन्त का अन्नवाची सुबन्त के साथ समास हो सो तृतीया तत्पुरुष हो । जिससे अन्न का संस्कार किया जाय उसको व्यञ्जन कहते हैं । जैसे—दध्ना उपसिक्तओदनः+दध्योदनः । क्षीरौदनः ॥

८८—भक्ष्येण मिश्रीकरणम् ॥ अ० २ । १ । ३४ ॥

मिश्रीकरण वाची तृतीयान्त सुबन्त भक्ष्यवाची सुबन्त के सङ्ग में वि० समास पावे सो तृतीया तत्पुरुष हो । जैसे—गुडेन मिश्रा धानाः+गुडधानाः । घृतेन मिश्रं शाकम्+घृतशाकम् ॥

८९—ओजः सहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ॥ अ० ६ । ३ । ३ ॥

जो उत्तरपद परे हो तृतीयान्त ओजस सहस् अम्भस् तमस् शब्दों से परे तृतीया का अलुक् हो, जैसे—ओजसा कृतम् । सहसा कृतम् । अम्भसा कृतम् । तमसा कृतम् ॥[2]

९०—वा०-पुंसानुजो जनुषान्धो विकृताक्षः इति चोपसंख्यानम् ॥

पुंसानुजः । जनुषान्धः । विकृताक्षः ॥

---

१. वाष्पेण च्छेद्यानि तृणानि = "वाष्पच्छेद्यानि तृणानि" यहां करणवाची तृतीयान्त सुबन्त "वाष्प" के साथ कृत्यप्रत्ययान्त "छेद्य" का समास हुआ है । भाप से टूटने योग्य तृण हैं, अर्थात् अत्यन्त कोमल हैं ॥

अ० भाष्य भाग १ पृ० १९७ ॥

२. [वा०—अञ्जस उपसंख्यानम् ॥ अञ्जसा कृतम् = आर्जवेन कृतमित्यर्थः] ॥

९१–मनसः संज्ञायाम् ॥ अ० ६ । ३ । ४ ॥

जो संज्ञा विषय में उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्त मनस् से परे तृतीया का अलुक् हो । जैसे—मनसादत्ता । मनसागुप्ता । मनसारामः॥

९२–आज्ञायिनि च ॥ अ० ६ । ३ । ५ ॥

जो आज्ञायिन् उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्तमनस् से परे तृतीया का अलुक् हो । जैसे—[मनसा आज्ञातुं शीलमस्य =] मनसाज्ञायी ॥

९३–आत्मनश्च पूरणे[1] ॥ अ० ६ । ३ । ६ ॥

[जो पूरण प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हो तो तृतीयान्त आत्मन् शब्द से परे तृतीया का अलुक् हो] आत्मनाषष्ठः । आत्मनापञ्चमः ।

[चतुर्थी तत्पुरुष]

९४–चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ॥ अ० २ । १ । ३५ ॥

जो तदर्थ अर्थात् विकृतिवाची चतुर्थ्यन्त सुबन्त, अर्थ बलि हित सुख और रक्षित सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो चतुर्थी तत्पुरुष कहावे[2] । [तदर्थ] जैसे—यूपाय दारु+यूपदारु । कुण्डलाय हिरण्यम्+कुण्डलहिरण्यम्[3] । इह न भवति । रन्धनाय स्थाली । अवहननायोलूखलमिति ॥

---

१. [यह सूत्र है वा वार्तिक ? आज्ञायिनि च ॥ अ० ६ । ३ । ५ ॥ इस सूत्र पर नागेशभट्ट लिखते हैं:–"अत्रात्मनश्च पूरणे इति विशिष्टं वार्तिकमिति अत्रत्य भाष्यस्वरसादायाति । 'वैयाकरणाख्यायामित्यत्र' 'परस्यचेति' चेन परशब्दप्रतिद्वन्द्वितया आत्मशब्दस्यैव ग्रहणं, तदुभयञ्चैकसूत्रमित्याहुः ।" स्पष्ट है कि वे इसे वार्तिक और इससे अगले दो सूत्रों को एक सूत्र मानते हैं]"

२. यहां से चतुर्थी तत्पुरुष समास का आरम्भ समझना ॥

३. "जो [चतुर्थी] चतुर्थ्यन्त शब्द का वाची है, उसके लिये जो हो उसे तदर्थ कहते हैं । चतुर्थ्यन्त जो सुबन्त है वह तदर्थ, बलि, हित, सुख [और] रक्षित इन छः सुबन्तों के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हो

९५–वा०–अर्थेन नित्यसमासवचनं सर्वलिङ्गता च वक्तव्या ॥[1]

[अर्थ] जैसे—ब्राह्मणार्थं पयः । ब्राह्मणार्था यवागूः । ब्राह्मणार्थः कम्बलः । [बलि] कृमिभ्यो बलिः+कृमिबलिः । [हित] गोहितम् । मनुष्यहितम् । सुख गोसुखम् । [रक्षित] गोरक्षितम् । अश्वरक्षितम् ॥

९६–वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ॥ अ० ६ । ३ । ७ ॥

जो उत्तरपद परे हो तो वैयाकरणों की आख्या अर्थात् संज्ञा विषय में आत्मन् शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । आत्मनेभाषा । आत्मनेपदम् ॥

९७–परस्य च ॥ अ० ६ । ३ । ८ ॥

जो वैयाकरणों की आख्या अर्थ में उत्तरपद परे हो तो पर शब्द से परे चतुर्थी का अलुक् हो । जैसे—परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

वह समास तत्पुरुष कहावे । इस सूत्र में बलि और रक्षित शब्द के ग्रहण से यह समझा जाता है कि तदर्थ—शब्द से सामान्य [तदर्थमात्र चतुर्थ्यन्त का] ग्रहण नहीं किन्तु विकृति वाची चतुर्थ्यन्त प्रातिपदिक का प्रकृतिवाची प्रातिपदिक के साथ समास होता है । तदर्थ [जैसे]—कुण्डलाय हिरण्यम् = कुण्डलहिरण्यम् । कुण्डल बनाने के लिये यह सुवर्ण है । यहाँ विकृतिवाची "कुण्डल" शब्द का प्रकृतिवाची "हिरण्य" के साथ समास हुआ है ।"

१. "अर्थेन" इस वार्त्तिक का यह प्रयोजन है कि इस सूत्र में जो अर्थ–शब्द के साथ समास किया है, पूर्व विकल्प से वाक्य न रहे, किन्तु नित्य समास हो जाय । और अर्थ शब्द नित्य पुँल्लिङ्ग है । सो तत्पुरुष समास के उत्तरपद प्रधान होने से सर्वत्र पुँल्लिग प्राप्त होता है सो न हो किन्तु जो विशेष्य का लिङ्ग हो, वही विशेषण का भी हो जाय ॥

अष्टा० भाष्य० भा० १ पृ० १९९–२००

[पञ्चमी तत्पुरुष]

९८-पञ्चमी भयेन ॥ अ० २।१।३६॥

दो पञ्चम्यन्त सुबन्त, भय सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो सो पञ्चमी तत्पुरुष हो[1]। जैसे—वृकेभ्यो भयम्+वृकभयम्। चोरभयम्। दस्युभयम्॥

९९-वा०-भयभीतभीतिभीभिरिति वक्तव्यम्॥

जैसे—वृकेभ्यो भीतः=वृकभीतः। वृकभीतिः। वृकभीः।

१००-अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः[2]॥

अ० २।१।३७॥

जो पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक, अपेत अपोढ मुक्त पतित और अपत्रस्त इन सुबन्तों के साथ समास होता है सो पञ्चमी तत्पुरुष हो। जैसे—सुखादपेतः=सुखापेतः। दुःखापेतः। कल्पनापोढः। कृच्छ्रान्मुक्तः। चक्रमुक्तः। वृक्षपतितः। नरकापत्रस्तः। अल्पशः अर्थात् पञ्चमी अल्पशः समास पावे। सब पञ्चमी नहीं। इससे प्रासादात् पतितः। भोजनादपत्रस्तः। इत्यादि में नहीं होता।

१०१-स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन॥ अ० २।१।३८॥

जो स्तोक अन्तिक दूर और इनके तुल्य पञ्चम्यन्त है [और कृच्छ्रशब्द] वे क्तान्त सुबन्त के साथ समास पावें सो पञ्चमी तत्पुरुष हो।

१०२-अलुगुत्तरपदे॥ अ० ६।३।१॥

अलुक् और उत्तरपद। इन दो पदों का अधिकार किया है।

---

१. यहां से पञ्चमी तत्पुरुष का आरम्भ है।

२. [इस की व्याख्या महर्षिकृत भाष्य में भिन्न प्रकार से है, जिज्ञासुजन वहीं देखें]॥

१०३–पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ॥ अ० ६ । ३ । २ ॥

स्तोक आदि प्रातिपदिकों से परे उत्तरपद हो तो पञ्चमी विभक्ति का लुक् न हो । जैसे—स्तोकान्मुक्तः । स्वल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । समीपादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रान्मुक्तः । कृच्छ्राल्लब्धः । क्लेशान्मुक्तः ।

१०४–वा०–शतसहस्रौ परेणेति वक्तव्यम् ॥

शतात्परे=परश्शताः । सहस्रात्परे=परस्सहस्राः । राजदन्तादित्वात्परनिपातः । निपातनात् सुडागमः ।

[सप्तमी तत्पुरुष]

१०५–सप्तमी शौण्डैः ॥ अ० २ । १ । ३९ ॥

जो सप्तम्यन्त सुबन्त शौण्ड आदि सुबन्तों के साथ वि० समास को प्राप्त हो सो सप्तमी तत्पुरुष हो[1] । जैसे—अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः । अक्षधूर्तः । अक्षकितवः ।

१०६–सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ॥ अ० २ । १ । ४० ॥

जो सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध, सुबन्तों के सङ्ग सप्तम्यन्त सुबन्त का समास होता है सो तत्पुरुष होता है । [सिद्ध—] जैसे—सांकाश्यसिद्धः । ग्रामसिद्धः । [शुष्क—] आतपशुष्कः । छायाशुष्कः । [पक्व—] पयःपक्वः । तैलपक्वः । घृतपक्वः । स्थालीपक्वः । [बन्धः—] चक्रबन्धः । गृहबन्धः ।

१०७–ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ॥ अ० २ । १ । ४१ ॥

१०८–वा०–ध्वाङ्क्षेणेत्यर्थग्रहणं कर्तव्यम् ॥

जो क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ में सप्तम्यन्त सुबन्त ध्वाङ्क्षवाची सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो ।

---

१. यहाँ से आगे सप्तमी तत्पुरुष का अधिकार चला है ॥

जैसे—तीर्थध्वाङ्क्ष इव तीर्थध्वाङ्क्षः । अनवस्थित इत्यर्थः । तीर्थकाकः । तीर्थवायसः । क्षेप इति किम् । तीर्थेध्वाङ्क्षस्तिष्ठति ।

१०९—कृत्यैर्ऋणे ॥ अ० २ । १ । ४२ ॥

ऋण अर्थ जाना जाय[1] तो सप्तम्यन्त सुबन्त कृत्य प्रत्ययान्त के साथ समास पावे मासे देयमृणम्=मासदेयम् । सम्वत्सरदेयम् । पूर्वाह्णे गेयं साम[2] । प्रातरध्येयोऽनुवाकः । ऋण इति किम् ? मासे देया भिक्षा ।

११०—संज्ञायाम् ॥ अ० २ । १ । ४३ ॥

सञ्ज्ञा अर्थ में जो सप्तन्यन्त, सुबन्त, सुबन्त के सङ्ग समास पावे । सो सप्तमी तत्पुरुष समास होता है । जैसे—अरण्ये तिलकाः । अरण्ये मापाः । वने किंशुकाः । हलदन्तात्सप्तम्याः सञ्ज्ञायाम् ॥ अ० ६ । ३ । ९ ॥ इत्युलुक् ॥

१११—क्तेनाहोरात्रावयवाः ॥ अ० २ । १ । ४४ ॥

जो दिन और रात्रि के अवयववाची सप्तम्यन्त सुबन्त प्रातिपादिक, क्तान्त सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो सप्तमी तत्पुरुष समास हो । जैसे—पूर्वाह्णे कृतम्=पूर्वाह्णकृतम् ।

---

१. "व्याज सहित में आपका धन वापिस दूंगा ऐसा समझ के किसी के धन का जो ग्रहण करना और नियम से अवश्य कर्त्तव्य कार्य कि जिसके न करने से मनुष्य दोष का भागी होता है, ऋण कहाता है ।"

२. यहां समास हुआ है परन्तु "पूर्वाह्णे दातव्या भिक्षा" यहां समास नही होगा क्योंकि "कृत्यैर्नियोगे यद् ग्रहणम्" इस वार्त्तिक से जो इसी सूत्र पर है कृत्यसंज्ञक प्रत्ययान्त में से यत् प्रत्ययाग्रन्त शब्दों के साथ ही समास समझना चाहिये ।"

"[पूर्वाह्णे गेयं साम" "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" ॥ अ० ६ । ३ । १४ ॥ इस सूत्र से सप्तमी का लुक् नहीं हुआ] ।

अपराह्णकृतम् । पूर्वरात्रकृतम् । पररात्रकृतम् । अवयवग्रहणं किम् ? अहनि भुक्तम् । रात्रौ कृतम् ।

११२–तत्र ॥ अ० २ । १ । ४५ ॥

जो तत्र सप्तम्यन्त सुबन्त, क्तान्त सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो । जैसे—तत्रभुक्तम् । तत्रपीतम् । तत्रमृतः ।

११३–क्षेपे ॥ अ० २ । १ । ४६ ॥

जो क्षेप नाम निन्दा अर्थ में सप्तम्यन्त सुबन्त, क्तान्त सुबन्त के साथ समास पावे सो सप्तमी तत्पुरुष हो । अवतप्ते नकुलस्थितं तवैतत् । उदके विशीर्णम् । प्रवाहे मूत्रितम् । भस्मनि हुतम् । निष्फले यत् क्रियते तदेवात्रोच्यते । तत्पुरुषे कृति बहुलम् ॥ ६ । ३ । १४ ॥ इत्यलुक् ।

११४–पात्रेसमितादयश्च ॥ अ० २ । १ । ४७ ॥

पात्रेसमित आदि शब्द निपातन किये हैं क्षेप अर्थ में सो सप्तमी तत्पुरुष जानना । पात्रेसमिताः । पात्रेबहुलाः । उदरक्रिमिः । इत्यादि ।

११५–हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ॥ अ० ६ । ३ । ९ ॥

हलन्त और अदन्त प्रातिपदिक से परे सप्तमी का अलुक् हो जो संज्ञाविषय में उत्तरपद परे हो तो । जैसे—युधिष्ठिरः । त्वचिसारः । अदन्तात् । अरण्ये तिलकाः । अरण्ये माषकाः । वने किंशुकाः । वने हरिद्रकाः । वने वल्बजकाः । पूर्वाह्णे स्फोटकाः । कूपे पिशाचका । [हलदन्तादिति किम्] ? नद्यां कुक्कुटिका=नदीकुक्कुटिकाः । भूम्यां पाशाः=[भूमिपाशाः] । संज्ञायामिति किम् ? अक्षशौण्डः ।

११६–वा०–हृद्द्युभ्यां ङेः ॥

जो उत्तरपद परे हो हृद् और दिव् से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे—हृदिस्पृक्। दिविस्पृक्।

११७—कारनाम्नि च प्राचां हलादौ ॥ अ० ६। ३। १०॥

कारनाम[1] हलादि उत्तरपद परे हो तो प्राचीनों के मत में हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे—सूपेशाणः। मुकुटेकार्षापणम् हलेद्विपदिका। हलेत्रिपदिका। कारनाम्नीति किम्? अभ्यर्हिते पशुः = [अभ्यर्हितपशुः]। प्राचामिति किम्? यूथे पशुः = यूथपशुः। हलादाविति किम्? अविकटे उरणः = अविकटोरणः। हलदन्तादित्येव। नद्यां दोहनी = नदीदोहनी।

११८—मध्याद्गुरौ ॥ अ० ६। ३। ११॥

[गुरु उत्तरपद परे हो तो मध्य से परे सप्तमी का अलुक् हो]। मध्येगुरुः।

११९—वा०—अन्ताच्चेति वक्तव्यम् ॥

अन्तेगुरुः।

१२०—अमूर्द्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ॥ अ० ६। ३। १२॥

जो कामवर्जित उत्तरपद परे हो तो मूर्द्ध और मस्तक भिन्न [स्वाङ्गवाचक] हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो। जैसे—कण्ठे कालो यस्य सः = कण्ठेकालः। उरसिलोमा। उदरेमणिः। अमूर्द्धमस्तकादिति किम्? मूर्द्धशिखः। मस्तकशिखः। अकाम इति किम्? मुखे कामो यस्य = मुखकामः। स्वाङ्गादिति किम्? अक्षशौण्डः। हलदन्तादिति किम्? अङ्गुलित्राणः। जङ्घावलिः।

---

१. वाणिग्भिः कर्षकैः पशुपालैश्च राज्ञे देयो भागो रक्षानिबन्धनः कारः। तस्य नाम कारनाम। इति न्यासकारः॥

१२१–बन्धे च विभाषा ॥ अ० ६ । ३ । १३ ॥

जो घञन्त बन्ध उत्तरपद परे हो तो विकल्प करके हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी का अलुक् हो । जैसे—हस्ते बन्धः= हस्तबन्धः । चक्रेबन्धः=चक्रबन्धः [हलदन्तादित्येव । गुप्तिबन्धः] ।

१२२–तत्पुरुषे कृति बहुलम्[1] ॥ अ० ६ । ३ । १४ ॥

तत्पुरुष समास में कृदन्त उत्तरपद परे हो तो सप्तमी का अलुक् बहुल करके हो । अर्थात् कहीं-कहीं हो । स्तम्बेरमः । कर्णेजपः । न च भवति । कुरुचरः । मद्रचरः ।

१२३–प्रावृड्शरत्कालदिवां जे ॥ अ० ६ । ३ । १५ ॥

जो ज उत्तरपद परे हो तो प्रावृट्, शरत्, काल, दिव, इनसे परे सप्तमी का अलुक् हो । जैसे प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः ।

१२४–विभाषा वर्षक्षरशरवरात् ॥ अ० ६ । ३ । १६ ॥

इन शब्दों से परे वि० [से] सप्तमी का अलुक् हो । वर्षेजः । वर्षजः । क्षरेजः । क्षरजः । वरेजः । वरजः ।

१२५–घकालतनेषु कालनाम्नः ॥ अ० ६ । ३ । १७ ॥

जो[2] घसंघकप्रत्यय, काल और तन प्रत्यय परे हों तो सप्तमी का [विकल्प से] अलुक् हो । जैसे—पूर्वाह्णेतरे । पूर्वाह्णेतमे ।

---

१. "विभाषायां प्रकृतायां बहुलग्रहणं क्वचित् प्रवृत्त्यादीनामर्थानां संग्रहार्थम् । [क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव । विधेर्विधानं बहुधा विलोक्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति] ॥ इति ॥ तेनालुक् प्रवृत्तिः क्वचिदेव भवति स्तम्बेरम इत्यादौ । क्वचिदप्रवृत्तिरेव कुरुचर इत्यादौ । क्वचिदुभयं सरसिजं सरोसमित्यादौ । क्वचिदन्यदेव ब्राह्मणाच्छंसीत्यादौ" । इत्येवं न्यासेऽस्ति सुप्रपञ्चितम् ॥

२. तरप्तमपौ घः अ० १।१।२१ इस सूत्र से तरप् और तमप् की घ संज्ञा है ।

पूर्वाह्णतरे। पूर्वाह्णतमे। पूर्वाह्णेकाले। पूर्वाह्णकाले। पूर्वाह्णेतने। पूर्वाह्णतने। कालनाम्न इति किम्? शुक्लतरे। शुक्लतमे। हलदन्तादिति किम्? रात्रितरायाम्।

१२६–शयवासवासिष्वकालात् ॥ अ० ६। ३। १८॥

जो शय, वास, वासि, ये उत्तरपद परे हों तो [अकालवाचक से परे] सप्तमी का [विकल्प से] अलुक् हो। खे शयः। खशयः। ग्रामे वासः ग्रामवासः। ग्रामे वासी। ग्रामवासी। अकालादिति किम्? पूर्वाह्णशयः। हलदन्तादित्येव। भूमिशयः।

१२७–नेन्सिद्धबध्नातिषु च ॥ अ० ६। ३। १९॥

जो इन् प्रत्ययान्त सिद्ध और बध्नाति ये उत्तरपद परे हों तो सप्तमी का अलुक् न हो अर्थात् लुक् हो। स्थण्डिलशायी। सांकाश्यसिद्धः। चक्रबन्धकः। चरकबन्धकः।

१२८–स्थे च भाषायाम् ॥ अ० ६। ३। २०॥

जो स्थ उत्तरपद परे हो तो लोक में सप्तमी का अलुक् न हो। जैसे—समस्थः। विषमस्थः। भाषायामिति किम्। कृष्णोस्याखरेष्ठः।

[समानाधिकरण तत्पुरुष वा कर्मधारय समास]

१२९–पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन ॥

अ० २। १। ४८॥

पूर्व काल यह अर्थ का ग्रहण है। पूर्वकाल [वाची शब्द]। एक। सर्व। जरत्। पुराण। नव और केवल [ये सात] सुबन्त शब्द समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास पावे[1]। जैसे—पूर्वस्नातः

---

१. यह समास बहुधा प्रथमा विभक्ति में आता है, इसलिये प्रथमा तत्पुरुष और कर्मधारय समास भी कहते हैं। [समानाधिकरण जो तत्पुरुष होता है उसकी कर्मधारय विशेष संज्ञा "तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः"। अ० १। २। ४२॥ इस सूत्र से होती है]॥

पश्चादनुलिप्तः=स्नातानुलिप्तः[१] । कृष्टसमीकृतम् । दग्धप्ररूढम् । एका चासौ शाटी च=एकशाटी । सर्वे च ते वेदाश्च=सर्ववेदाः । जरच्चासौ वैद्यश्च=जरद्वैद्यः । पुराणान्नम् । नवान्नम् । केवलान्नम् । समानाधिकरणेनेति किम् ? एकस्याःशाटी ।

१३०—दिक्संख्ये संज्ञायाम् ॥ अ० २ । १ । ४९ ॥

संज्ञा के विषय में दिक् और संख्यवाची शब्द समानाधिकरण के साथ समास पावें । समानाधिकरण की अनुवृत्ति पाद की समाप्ति पर्यन्त जाननी । पूर्वेकपुकामशमी[२] । अपरेषुकामशमी । संख्या । पञ्चाम्राः सप्तर्षयः । संज्ञायामिति किम् ? उत्तराः वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ।

१३१—तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ॥ अ० २ । १ । ५० ॥

दिग् वाची शब्द और संख्या वाची शब्द तद्धित अर्थ में तथा उत्तरपद परे हो तो समाहार अर्थ में समानाधिकरण के साथ समास को प्राप्त हों । पूर्वस्यां शालायां भवः=पौर्वशालः । औत्तरशालः । आपरशालः । उत्तरपदे । पूर्वाशाला प्रिया यस्य=स पूर्वशालाप्रियः । अपरशालाप्रियः । संख्यातद्धितार्थे । पाञ्चनापितिः । पाञ्चकपालः । उत्तरपदे । पञ्चगवधनः । समाहारे । पञ्चकपालानि समाहृतानि यस्मिस्तत्पञ्चकपालं गृहम् । पञ्चफली । दशपूली । पञ्चकुमारि । दशग्रामी । अष्टाध्यायी ।

---

१. [पूर्व स्नान किया पश्चात् लेपन किया यहां पूर्वकालवाची स्नान शब्द है, अपरकालवाची अनुलिप्त है । स्नान और लेपन का करने वाला एक ही है । यही समानाधिकरण्य है] ।

२. "यहां दिशावाची पूर्व शब्द का समास इषुकामशमी के साथ हुआ है" पूर्वा चासौ इषुकामशमी चेति पूर्वेषुकामशमी । पूर्वेषुकामशमीत्यादिर्ग्रामाणां संज्ञा । इति न्यासकारः ॥

१३२–संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ अ० २ । १ । ५१ ॥

जो तद्धितार्थोत्तरपद समाहार में संख्यापूर्व समास है सो द्विगु संज्ञक होता है । पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः=पञ्चकपालः । दश कपालः । द्विगोर्लुगनपत्य इति लुक् । ऐसे ही समासान्त तथा ङीप् इत्यादि कार्य्य जानने चाहियें । पञ्चनावप्रियः । तावच्छती ।

१३३–कुत्सितानि कुत्सनैः ॥ अ० २ । १ । ५२ ॥

जो कुत्सितवाची सुबन्त का कुत्सनवचन सुबन्तों के साथ समास हो सो तत्पुरुष संज्ञक हो । जैसे—वैयाकरणखसूचिः । निष्प्रतिभ इत्यर्थः । याज्ञिककितवः । अयाज्य याजनतृष्णापरः । मीमांसकदुर्दुरूढः । नास्तिकः । कुत्सितानीति किम् ? वैयाकरणश्चौरः । कुत्सनैरिति किम् ? कुत्सितो ब्राह्मणः ।

१३४–पापाणके कुत्सितैः[१] ॥ अ० २ । १ । ५३ ॥

जो पाप और अणक सुबन्त का कुत्सित सुबन्तों के साथ समास हो सो समानाधिकरण हो । जैसे—पापनापितः । पापकुलालः । अणकनापितः । अणककुलालः ।

१३५–उपमानानि सामान्यवचनैः ॥ अ० २ । १ । ५४ ॥

जो (स०[२]) उपमानवाची सुबन्त का सामान्यवचन सुबन्तों

---

१. "पूर्व सूत्र का अपवाद यह सूत्र है । क्योंकि पाप-अणक शब्द कुत्सनवाची हैं, उनको सूत्र से पर निपात प्राप्त था उनके पूर्वनिपात के लिये इस सूत्र का आरम्भ है ।" अ० भाष्य० ॥

२. इस संकेत से समानाधिकरण तत्पुरुष जानना ।

के साथ समास हो सो [स०] । शस्त्रीव श्यामा=शास्त्रीश्यामा देवदत्ता[1] । कुमुदश्येनी । हंसगद्गदा । घन इव श्यामः=घनश्यामो देवदत्तः । उपमानानीति किम् ? देवदत्ता श्यामा । सामान्यवचनैरिति किम् ? पर्वता इव बलाहकाः ।

१३६–उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥

अ० २ । १ । ५५ ॥

जो उपमित अर्थात् उपमेयवाची सुबन्त का व्याघ्रादि [गणपाठ सूत्र १० में प्रोक्त] सुबन्तों के साथ समास हो [सामान्य जो उपमान और उपमेय का साधारण धर्म है, उसका प्रयोग न हो तो] सो [स०] । पुरुषोऽयं व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः[2] । पुरुषसिंहः । सिंह इव ना=नृसिंहः । सामान्यप्रयोग इति किम् ? पुरुषो व्याघ्र इव शूरः ।

---

१. "अज्ञातवस्तु जानने के लिये जो अत्यन्त समीप अर्थात् शीघ्र जानने का हेतु हो, उसको उपमान कहते हैं । उपमान और उपमेय दोनों के बीच में जो समान धर्म होता है, उसका वाची जो शब्द है, उसको सामान्य वचन कहते हैं । उपमानवाची जो सुबन्त हैं वे सामान्यवचन सुबन्तों के साथ वि० करके समास को प्राप्त हों, वह समास तत्पुरुष संज्ञक हो शस्त्रीव श्यामा= शस्त्री श्यामा देवदत्ता । कोई छोटा शस्त्र जैसे श्याम हो, ऐसी श्याम यह स्त्री है यहां शस्त्री उपमानवाची है, और श्याम सामान्यवचन [है] अर्थात् [श्यामगुण] स्त्री और शस्त्र दोनों में रहता है ।

अ० भाष्य० भा० १ पृ० २१३

२. "पुरुष व्याघ्र के तुल्य है, यहां पुरुष तो उपमेय और व्याघ्र उपमान है । पुरुष व्याघ्र के साथ समास हुआ है । साधारण धर्म बल है । पुरुष व्याघ्र जैसे बलवान् है, इस साधारण धर्म [बल] का प्रयोग [समास में अभीष्ट] नहीं ॥ पूर्व सूत्र से उपमानवाची शब्दों का पूर्व निपात होता है, उपमेयवाची शब्दों का पूर्वनिपात होने के लिये यह सूत्र है । अ० भाष्य० भा० १ पृ० २१४

१३७–विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ॥ अ० २ । १ । ५६ ॥

जो विशेषणवाची सुबन्त का विशेष्यवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ [बहुल करके] समास हो सो [स०] । नीलञ्च तदुत्पलञ्च = नीलोत्पलम्[1] । रक्तोत्पलम् । बहुलवचनं व्यवस्थार्थम् । क्वचिन्नित्यसमास एव । कृष्णसर्पः । लोहितशालिः । क्वचिन्न भवत्येव । रामो जामदग्न्यः । अर्जुनः कार्त्तवीर्य्यः । क्वचिद्विकल्पः । नीलमुत्पलं नीलोत्पलम् ।

१३८–पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च ॥ अ० २ । १ । ५७ ॥

पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम और वीर, जो इन सुबन्तों का समानाधिकरण [विशेष्यवाची] सुबन्तों के साथ समास हो सो [स०] । पूर्वश्चासौ पुरुषश्च = पूर्वपुरुषः । अपरपुरुषः । प्रथमपुरुषः । चरमपुरुषः । जघन्यपुरुषः । समानपुरुषः । मध्यपुरुषः । मध्यमपुरुषः वीरपुरुषः[2] ।

---

१. "यहां सर्वत्र विशेषण का पूर्वपद में और विशेष्य का उत्तरपद में प्रयोग होता है ।

विशेषण उसको कहते हैं कि जिससे किसी की निवृत्ति हो के किसी का निश्चय हो । मूल पदार्थ का वाची जो है, उसको विशेष्य कहते हैं । विशेष्य और विशेषण ये विवक्षा से माने जाते हैं । कहीं विशेषणवाची शब्द विशेष्य-वाची भी हो जाता और विशेष्यवाची किसी विवक्षा से विशेषणवाची हो जाता है ।

२. "पूर्वादि विशेषणवाची शब्दों का पुरुष आदि विशेष्यवाची समाना-धिकरण शब्दों के साथ समास हुआ है, पूर्वसूत्र का व्याख्यानरूप यह भी सूत्र है अथवा नियमार्थ समझना चाहिये कि पूर्वादि शब्दों में बहुल न हो ।"

अ० भाष्य० भा० १ पृ० २१५–२१६

१३९–श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ अ० २ । १ । ५८ ॥

श्रेणि आदि सुबन्तों का कृत[1] आदि सुबन्तों के साथ [वि०] समास हो सो [स०]।

१४०–वा०–श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनम्[2] ॥

जैसे—अश्रेणयः श्रेणयः कृताः=श्रेणीकृता वणिजो वसन्ति। च्व्यन्तानान्तु कुगतिप्रादयः [अ० २ । २ । १८] इत्यनेन नित्यसमासः।

१४१–क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् ॥ अ० २ । १ । ५९ ॥

जो नञ् रहित क्तान्त सुबन्त का नञ् विशिष्ट क्तान्त सुबन्त समानाधिकरण के साथ [वि०] समास हो सो [स०] । जैसे—कृतं च तदकृतम्=कृताकृतम्। भुक्ताभुक्तम् । पीतापीतम्। उदितानुदितम्। अशितानशितेन जीवति। क्लिष्टाक्लिष्टेन वर्त्तते।

१४२–वा० कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् ॥

कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गत-

---

१. [श्रेण्यादिगण और कृतादिगण गणपाठ सूत्र ११ में देखिये। महाभाष्य में कृतादिगण को आकृतिगण कहा है।]

२. "इस वार्त्तिक का प्रयोजन है कि सूत्र से जो समास होता है, वहाँ च्व्यर्थ में हो। च्व्यर्थ उसको कहते हैं कि जो पहले प्रसिद्ध न हो और पीछे हो जाय। [जैसे—] अश्रेणयः श्रेणयः कृताः=श्रेणीकृताः। यहाँ श्रेणि शब्द का कृत समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास हुआ है।"

अ० भाष्य० भा० १ पृ० २१८ ॥

प्रत्यागतम्[1] । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटापुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका ।

१४३–वा०–समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च[2] ॥

---

१. [महाभाष्य में "गतप्रत्यागतादीनां चोपसंख्यानम्" यह वार्त्तिक अलग पढ़ा है। गणपाठ सूत्र १२ में एकत्र पठित है। ये दोनों आकृतिगण समझने चाहिए]। "इन दो वार्त्तिकों का प्रयोजन यह है कि सूत्र से तो केवल एक में नञ् समास हो और एक शब्द केवल ही हो, शब्दों के स्वरूप में कोई भेद न हो तब समास होता है, इनसे जिन क्त प्रत्ययान्त शब्दों की आकृति भिन्न-भिन्न हो उनका भी परस्पर समास हो जाय।" महर्षि अष्टा० भाष्य०॥

२. महाभाष्य और ऋषि अष्टाध्यायी भाष्य में यह वार्त्तिक "वर्णो वर्णेन" अ० २। १। ६८॥ सूत्र पर पठित है। ऋषि भाष्य में इसका व्याख्यान इस प्रकार है—

"समानाधिकरण समास के अधिकार में शाकपार्थिवादि शब्दों को भी समझना अर्थात् इस अधिकार में समास के जो-जो काम हैं वे शाकपार्थिवादिकों में भी हों। और पूर्व किसी समास का जो उत्तर [पद] हो, उसका लोप हो। जैसे—शाकभोजी पार्थिवः। यहां [पूर्व समस्त] शाकभोजी शब्द का पार्थिव–शब्द के साथ समास हुआ, और शाकभोजी–पद में भोजी–शब्द उत्तरपद है, उसका लोप हो गया। प्रयोजन यह है कि दो शब्दों का पूर्व समास हुआ हो, फिर उन दोनों [का] अन्य शब्द के साथ जो समानाधिकरण समास हो, तो पूर्व के दो शब्दों में से उत्तरपद का लोप हो जाय। इस वार्त्तिक से शाकपार्थिवादि आकृतिगण समझा जाता है।"

शाकप्रधानः पार्थिवः = शाकपार्थिवः। कुतपसौश्रुतः। अजातौल्वलिः।

१४४—सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः ॥ अ० २।१।६०॥

जो सन्, महत्, परम, उत्तम, उत्कृष्ट सुबन्तों का पूज्यमान [समाधिकरण] सुबन्तों के साथ [वि०] समास हो सो [स०]। जैसे—सत्पुरुषः। महापुरुषः। परमपुरुषः। उत्तमपुरुषः। उत्कृष्टपुरुषः। पूज्यमानैरिति किम् ? उत्कृष्टो गौः कर्दमात्।

१४५—वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्[1] **॥** अ० २।१।६१॥

जो वृन्दारक नाग कुञ्जर [समानाधिकरण] सुबन्तों के साथ पूज्यमान अर्थों के वाचक सुबन्त का [वि०] समास हो सो [स०] गोवृन्दारकः। अश्ववृन्दारकः। गोनागः। अश्वननागः। गोकुञ्जरः। पूज्यमानमिति किम्। सुसीमो नागः।

[इसी प्रकार कुतपवासाः सौश्रुतः = कुतपसौश्रुतः। अजापण्यस्तौल्वलिः = अजातौल्वलिः। यष्टिप्रधानो मौद्गल्यः = यष्टिमौद्गल्यः" आदि]।

१. "यह सूत्र पूर्व सूत्र का अपवाद है। पूर्व सूत्र से पूज्यमान का परनिपात होता है। यहां पूज्यमान का पूर्वनिपात होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है। पूज्यमानवाची जो सुबन्त है, वह पूजा के हेतु वृन्दारक, नाग और कुञ्जर, इन तीन सुबन्तों के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हो। वह समास तत्पुरुषसंज्ञक हो। अश्ववृन्दारकः, वृषभनागः, गोकुञ्जरः। यहां पूज्यमान अश्व, वृषभ और गौ-शब्द का [पूजावाचक] वृन्दारक, नाग और कुञ्जर सुबन्तों के साथ समास हुआ॥" ऋषि भाष्य॥

पूज्यमानवचनादेव वृन्दारक-नाग-कुंजराः पूजाहेतवः। इति अ० भाष्य भा० पृ० २२०॥

वृन्दारकादयो जातिशब्दाः। ते चोपमानत्वे सति पूजावचनाः भवन्ति। इति न्यासकारः॥

१४६–कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने ॥ अ० २ । १ । ६२ ॥

जो जाति के परिप्रश्न अर्थ में वर्त्तमान कतर कतम प्रत्ययान्त सुबन्त का समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास हो सो [स०]। जैसे—कतरकठः । कतरकलापः । कतमकठः । कतमकलापः । जातिपरिप्रश्न इति किम् ? कतरो भवतोर्देवदत्तः । कतमो भवतां देवदत्तः ।

१४७–किं क्षेपे ॥ अ० २ । १ । ६३ ॥

किम् शब्द का क्षेप [निन्दा] अर्थ में [समानाधिकरण] सुबन्त के साथ समास हो सो [स०] जैसे—किंराजा यो न रक्षति । किंसखा योऽभिद्रुह्यति । किंगौः यो न वहति । [क्षेपे इति किम् ? को राजा वाराणस्याम् । अत्र समासो न भवति] ।

१४८–किमः क्षेपे ॥ अ० ५ । ४ । ७० ॥

क्षेप अर्थ में जो कि शब्द उससे समासान्त प्रत्यय न हो[1] । [क्षेप इति किम् ? कस्य राजा = किंराजः । किंसखः । किंगवः] ।

१४९–पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्त्तैर्जातिः[2] ॥ अ० २ । १ । ६४ ॥

---

१. [अतः उपर्युक्त] किं राजा आदि उदाहरणों में टच् प्रत्यय न हुआ ।

२. [यह सूत्र विशेषणं विशेष्येण०] [सा० १३७] का अपवाद है—क्योंकि विशेषणविशेष्य समास में विशेषण पूर्व होता है । परन्तु यहाँ विपरीत अर्थात् विशेष्य [जाति] का पूर्व और विशेषण [पोटादि] का परनिपात होगा] ।

पोटा—जिसको उत्पन्न हुए थोड़े दिन हुए हों ।

जो पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद्, बष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक, धूर्त इन [तेरहसमानाधिकरण] सुबन्तों के साथ जातिवाची सुबन्तों का [विकल्प] समास होता है वह [स०] तत्पुरुष हो। जैसे—इभा चासौ पोटा च= इभपोटा। इभयुवतिः। अग्निस्तोकः। उदश्वित्कतिपयम् गोगृष्ठि गोधेनुः। गोवशा। गोवेहत्। गोबष्कयणी। कठप्रवक्ता कठश्रोत्रिहः। कठाध्यापकः। कठधूर्त्तः। जातिरिति किम्? देवदत्तः प्रवक्ता।

१५०–प्रशंसावचनैश्च ।। अ० २।१।६५॥

जातिवाची सुबन्त, प्रशंसावाची [समानाधिकरण] सुबन्तों के साथ समास को प्राप्त हो सो [स०]। जैसे—गोप्रकाण्डम् [शोभनः प्रशस्तो गौरित्यर्थः] अश्वप्रकाण्डम्। गोमतल्लिका। गोमचर्चिका। अश्वमचर्चिका। जातिरिति किम्? कुमारीमतल्लिका।

१५१–युवा खलतिपलितवलिनजरतीभिः ।। अ० २।१।६६॥

गृष्टि—जो एक वार ब्यानी हो।

धेन—जिसको ब्याए थोड़े दिन हुए हों।

वशा—वन्ध्या।

वेहत्—जिसका गर्भ गिर पड़ता हो।

वष्कयणी—जिसके सन्तान युवावस्था में हों [तरुणवत्सा]।

ये स्त्रीङ्गि शब्द हैं और पशुजाति में इनकी प्रवृत्ति होती है। इन शब्दों में समानाधिकरण तत्पुरुष की कर्मधारय संज्ञा होने से पुंवत् कर्मधारय० अ० ६।३।४२। इस सूत्र से पूर्व पद को [और स्त्रीलिङ्ग युवति शब्द में भी] पुंवद्भाव हो जाता है। शेष शब्दों के अर्थ स्पष्ट ही हैं।

महर्षिकृत अष्टा० भाष्य० के आधार से ॥ सं० ॥

खलति, पलित, वलिन और जरती, इन [समानाधिकरण] सुबन्तों के साथ युवन् सुबन्त [वि०] समास को प्राप्त हो सो [स०] तत्पुरुष हो। युवा खलतिः=युवखलतिः। युवतिः खलती= युवखलतिः। युवा पलितः=युवपलितः। युवतिः पलिता=युवपलिता। युवा वलिनः=युववलिनः। युवति वलिना=युववलिना। युवा जरन्=युवजरन्। युवतिर्जरती=युवजरती[1]।

१५२—कृत्यतुल्याख्या अजात्या ।। अ० २। १। ६७ ।।

कृत्य प्रत्ययान्त और तुल्य तथा तुल्य के समानार्थ जो सुवन्त सो जातिवर्जित [समानाधिकरण] सुवन्त के साथ [वि०] समास पावे सो समानाधिकरण तत्पुरुष कर्मधारयसमास हो। [कृत्यप्रत्ययान्त] जैसे—भोज्यं च तदुष्णञ्च=भोज्योष्णम्। भोज्यलवणम्। पानीयशीतम्। तुल्याख्या [तुल्यवाची जैसे—] तुल्यश्वेतः। तुल्यमहान। सदृशश्वेतः। सदृशमान्। अजात्येति किम्? रक्षणीयो मनुष्यः।

१५३—वर्णो वर्णेन ।। अ० २। १। ६८ ।।

वर्ण विशेषवाची समानाधिकरण सुबन्त के साथ वर्ण विशेष-वाची सुबन्त [विकल्प से] समास पावे सो [स०]। कृष्णसारङ्गः। लोहितसारङ्गः। कृष्णशबलः[2]। लोहितशबलः।

---

१. इस सूत्र में जरती शब्द स्त्रीलिङ्ग और सब शब्द "पुंल्लिङ्ग" पढ़े हैं। इसका यह प्रयोजन है कि खलति आदि यह प्रातिपदिक ग्रहण है सो स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों का ग्रहण समझना चाहिये।..............
स्त्रीलिङ्ग पक्ष में पुंवत् कर्म० ६। ३। ४२। से पूर्व पद का पुंवत् हो जाता है। अ० भा० भा० १ पृ० २२४ ।।
"कृष्णसारङ्गः। लोहितकल्माषः।" इत्यादि।
वर्ण विशेषवाची जो शब्द हैं, वे गुणवाची होते हैं। और गुण जो हैं वे

१५४–कुमारः श्रमणादिभिः ॥ अ० २ । १ ।६९ ॥

कुमार शब्द, श्रमण आदि [समानाधिकरण] सुबन्तो[१] के साथ समास पावे सो [स०] । कुमारी श्रमणा = कुमारश्रमणा । कुमारी प्रव्रजिता = कुमारप्रव्रजिता । कुमारी कुलटा = कुमारकुलटा इत्यादि ।

द्रव्याश्रित होते हैं । जिस द्रव्य में कृष्ण और सारङ्ग तथा लोहित और कल्माष गुण हो उसको मान के यहाँ समानाधिकरण माना जाता है ।"

अ० भाष्य भा० १ पृ० २२५ ॥

"ननु च कृष्णाशब्दो लोहितशब्दश्चावयवे वर्त्तते । सारङ्गशब्दस्तु समुदाये यथा शबलशब्दः । तत् कथमवयववृत्तेः कृष्णादिशब्दस्य समुदाय । वृत्तिना सारङ्गादिशब्देन सामान्याधिकरणय्मित्याह अवयवद्वारेणेत्यादि । कृष्णशब्द उपलक्षणम् । लोहितशब्दोऽप्येवमेव समानाधिकरणो भवति । कृष्णावयवसम्बन्धात् समुदाय एव कृष्ण इत्युच्यते । लोहितावयव-सम्बन्धाल्लोहित इति । अत एव गौणत्वादत्र सामानाधिकरण्यस्य विशेषणं विशेष्येणेत्यादिना [अ० २ । १ । ५६] समासो न प्राप्नोती-तीदमारभ्यते ॥" इति न्यासकारः ॥

१. अथ श्रमणादिगणः—श्रमणा, प्रव्रजिता, कुलटा, गर्भिणी, तापसी, दासी, बन्धकी, अध्यापक, अभिरूपक, पण्डित, पटु, मृदु, कुशल, चपल और निपुण ।

इस सूत्र में कुमार शब्द पुँल्लिङ्ग पढ़ा है । और श्रमणादिगण के साथ उसका समास किया है । सो श्रमणादिगण में बहुतेरे शब्द स्त्रीलिङ्ग भी पढ़े हैं । फिर स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग शब्द का सामानाधिकरण्य कैसे हो ? (उत्तर) प्रातिपदिकों के निर्देश में भिन्न लिङ्ग वाले शब्दों का भी ग्रहण होता है, इससे स्त्रीलिङ्ग शब्दों के साथ कुमार शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हो जाता है ॥"　　अ० भाष्य० भा० १ पृ० २२६ ।

१५५–चतुष्पादो गर्भिण्या ॥ अ० २ । १ । ७० ॥

चतुष्पादवाची [चार पाद वाले पशु आदि के वाची] सुबन्त, गर्भिणी [समानाधिकरण] सुबन्त के साथ [वि०] समास पावे सो [स०] तत्पुरुष हो । जैसे—गोगर्भिणी । अजागर्भिणी । महिषीगर्भिणी ।

१५६–वा०—चतुष्पाज्जातिरिति वक्तव्यम्[1] ॥

इह माभूत् । कालाक्षी गर्भिणी । स्वस्तिमती गर्भिणी । चतुष्पाद इति किम् ? ब्राह्मणी गर्भिणी ।

१५७–मयूरव्यंसकादयश्च[2] ॥ अ० २ । १ । ७१ ॥

---

१. इस वार्त्तिक का प्रयोजन यह है कि चतुष्पादवाचियों का जो समास किया है, वे जातिवाची शब्द होने चाहिये । सो पूर्व जातिवाचियों के ही उदाहरण दिये हैं । क्योंकि 'कालाक्षी गर्भिणी' यहाँ काले नेत्र वाली गौ वा अन्य कोई जीव जातिवाची नहीं, इससे समास नहीं हुआ ।

अष्टा० भाष्य भा० १ पृ० २२७

२. "मयूरव्यंसकादि गणशब्द हैं । वे समास किये हुए समानाधिकरण तत्पुरुष-संज्ञक निपातन किये हैं और इनमें नित्य समास होता है ।........ इस सूत्र में चकार ग्रहण निश्चय के लिये है कि मयूरव्यंसकादि में ही नित्य समास हो । 'परमो मयूरव्यंसकः' । यहाँ परमशब्द का समास नहीं हुआ ।"

यह आकृतिगण है इससे अविहित लक्षण अर्थात् गणपठित शब्दों से भिन्न समानाधिकरण तत्पुरुषविषयक शब्द भी मयूरव्यंसकादि से सिद्ध समझने चाहिये ॥ अष्टा० भाष्य० भा० १ पृ० २३१

मयूरव्यंसक आदि शब्द [गणपाठ सू० १४] निपातन किये हैं सो [स०] । जैसे—मयूरव्यंसकः[1] । छात्रव्यंसकः ॥

इति समानाधिकरणः कर्म्मधारयस्तत्पुरुषः समाप्तः ॥

—:※※:—

अथैकाधिकरणस्तत्पुरुषः ॥

१५८-पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे[2] ॥ अ० २ । २ । १ ॥

[अवयववाची जो] पूर्वः अपर, अधर, उत्तर ये सुबन्त एकदेशवाची अर्थात् अवयववाची[3] सुबन्त के साथ [वि०] समास पावें, एक[4] अधिकरण अर्थात् एक द्रव्य वाच्य हो तो [अर्थात् अवयव और अवयवी का अधिकरण एक हो तो वह समास तत्पुरुष कहावे] षष्ठसमासापवादोऽयं योगः । पूर्वं कायस्य=पूर्वकायः ।

---

१. मयूरश्चासौव्यंसकश्चेति=मयूरव्यंसकः । व्यंसकशब्दस्य पूर्वं निपाते प्राप्ते परनिपातार्थः पाठः । एवं चात्र मयूरव्यंसकादीनां यवनमुण्ड पर्यन्तानाम् ॥ इति न्यासकारः ॥

मयूर इव व्यंसको धूर्तो मयूरव्यंसकः । छात्र इव व्यंसकः । कम्बोज इव मुण्डः । इत्युपमानसमासापवादोऽयं समासः ॥ [देखें गणपाठ वेदाङ्गप्रकाश भाग १२ सूत्र १४ पर टिप्पणी] ॥

२. समानाधिकरण—ग्रहणं निवृत्तम् । विभाषा ग्रहणमनुवर्त्तते ॥

३. [“एकदेशवाची अर्थात् अवयववाची के स्थान पर” यहाँ “एक देशीवाची अर्थात् अवयवीवाची०” ऐसा पाठ होना चाहिये] ।

४. अनेक शब्द समस्त हो के हो एक ही पदार्थ के वाचक हों ।

अपरकायः। अधरकायः। उत्तरकायः। एकदेशिनेति किम्? पूर्वं नाभेः कायस्य। एकाधिकरण इति किम्? पूर्वं छात्राणामामन्त्रय।

१५९-अर्द्धं नपुंसकम् ॥ अ० २। २। २॥

जो नपुंकलिङ्ग अर्द्ध[1] शब्द एकदेशी एकाधिकरण सुबन्त के साथ [वि०] समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो। जैसे—अर्द्धं पिप्पल्याः= अर्द्धपिप्पली। अर्द्धकौशातकी। नपुंसकमिति किम्? ग्रामार्द्धः। नगरार्द्धः। एकदेशिनेत्येव। अर्द्धं ग्रामस्य देवदत्तस्य। एकाधिकरण इत्येव। अर्द्धं पिप्पलीनाम्।

१६०-द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्य्याण्यन्यतरस्याम्[2] ॥ अ० २। २। ३॥

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य्य ये सुबन्त एकदेशी एकाधिकरण सुबन्त के साथ [वि०] समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष हो। द्वितीयं भिक्षायाः=द्वितीयाभिक्षा। षष्ठीसमास पक्षे भिक्षाद्वितीयं वा। तृतीयं भिक्षायाः=तृतीयभिक्षा। भिक्षातृतीयं वा। चतुर्थं भिक्षायाः=चतुर्थभिक्षा। भिक्षाचतुर्थं वा। [तुर्यं भिक्षायाः= तुर्यभिक्षा। भिक्षातुर्यं वा] एकदेशिनेत्येव। द्वितीयं भिक्षायाः

---

१. एक वस्तु के दो भाग बराबर हों उस एक भाग का वाची जो अर्द्ध शब्द है, वह नपुंसक है। उसी का ग्रहण इस सूत्र में है। अन्य अवयव का वाची पुंल्लिङ्ग है।

२. यह सूत्र षष्ठी समास का अपवाद है। षष्ठी समास में द्वितीयादि शब्दों का पर प्रयोग होता और यहां पूर्व प्रयोग होता है। पूर्व से विकल्प की अनुवृत्ति चली आती है। फिर विकल्प ग्रहण इसलिये है कि षष्ठी समास भी हो जाय। इस प्रकार दो विकल्पों के होने से तीन प्रयोग सिद्ध होते हैं॥ अ० भाष्य भा० १ पृ० २३३, २३५॥

भिक्षुकस्य । एकाधिकरण इत्येव । द्वितीयं भिक्षाणाम् ।

१६१–प्राप्तापन्ने च द्वितीयया[1] ॥ अ० २ । २ । ४ ॥

---

१. अन्यतरस्यां—ग्रहणमनुवर्त्तते । 'एकदेशिनैकाधिकरणे' इति निवृत्तम् । ·······यह सूत्र द्वितीया तत्पुरुष [द्वितीया श्रितातीत० अ० २ । १ । २३] का अपवाद है । द्वितीया तत्पुरुष में तो द्वितीयान्त का पूर्वनिपात और यहां द्वितीयान्त पर प्रयुक्त होता है । सो इस सूत्र में दो विकल्पों की [द्वितीय विकल्प की] अनुवृत्ति होने से द्वितीया तत्पुरुष भी होता है ।

प्राप्त और आपन्न जो शब्द हैं वे द्वितीयान्त सुबन्त के साथ विकल्प करके समास को प्राप्त हों । वह समास तत्पुरुष कहावे । और प्राप्त-आपन्न शब्दों को अकारादेश हो जावे ।

प्राप्तो जीविकां=प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकाः । यहाँ प्राप्त—और आपन्न—शब्द का जीविका शब्द के साथ समास हुआ है । जीविका-प्राप्तः । जीविकापन्नः । यहाँ द्वितीया तत्पुरुष समास में जीविका शब्द पूर्व रहता है । [प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्ग विशिष्ट का भी ग्रहण होता है] प्राप्ता जीविकां=प्राप्तजीविका । आपन्ना जीविकां=आपन्न-जीविका । यहाँ पूर्वपद प्राप्ता—और आपन्ना—शब्द [के आकार] को ह्रस्व अकार आदेश हुआ है । समानाधिकरण तत्पुरुष में तो कर्मधारय—संज्ञा के होने से पूर्वपद को पुंवद्भाव हो जाता है । यहां समानाधिकरण की अनुवृत्ति नहीं, इससे पुंवत् नहीं पाता । इसलिये इस सूत्र में अकार का प्रश्लेष किया अर्थात् 'प्राप्तापन्ने' इसके अकार निकाला है । [यह बात जयादित्य ने काशिका में नहीं लिखी पता नहीं उसे विदित भी थी कि नहीं ?] ।" अष्टा० भाष्य भा० १ पृ० २३६ ॥

[न्यासकार श्रीजिनेन्द्रबुद्धि ने भी इसे समझा नहीं, ऐसा प्रतीत होता है] ॥ सं० ॥

प्राप्त और आपन्न सुबन्त के साथ [विकल्प से] समास को प्राप्त हों [सो तत्पुरुष हो] । जैसे—प्राप्तो जीविकाम्=प्राप्तजीविकः । जीविकाप्राप्त इति वा आपन्नो जीविकाम्—आपन्नजीविकः । जीविकापन्न इति वा ।

१६२—कालाः परिमाणिना[१] ।। अ० २ । २ । ५ ।।

कालवाची सुबन्त, परिमाणिवाची सुबन्त के साथ [वि०] समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष हो जैसे—मासो जातोऽस्य स मासजातः । संवत्सरजातः । द्व्यहजातः । त्र्यहजातः ।

---

१. यह सूत्र भी षष्ठी समास का अपवाद है । जो षष्ठी समास होता तो कालवाची शब्दों का पर निपात होता । और जब इस सूत्र से समास होता है तब कालवाची शब्द पूर्व होते हैं । परिमाणवाची जो कालशब्द हैं वे परिमाणिवाची सुबन्त के साथ विकल्प करके समास पावें । [जब काल शब्द परिमाण वचन हों तभी उत्तरपद का परिणामिवाचित्व गम्य है, अतः "कालाः" ऐसा सामान्य कथन भी इस सामर्थ्य से परिमाणवचन काल शब्दों का समास होना प्रकट करता है ।] वह समास तत्पुरुष—संज्ञक हो । मासो जातस्य = मासजातः । यहाँ मास शब्द का समास परिमाणिवाची जात—शब्द के साथ हुआ है ।

वा०—एकवचनद्विगोश्चोपसंख्याम् ।। म० अ० २ पा० २ आ० १ ।।

इस वार्त्तिक का यह प्रयोजन है कि सूत्र से जो समास होता है वह एकवचनान्त मास—शब्द को और द्विगु संज्ञक मास—शब्द को भी हो । एकवचनान्त का इसलिये है कि 'मासौ जातस्य' यहाँ द्विवचनान्त [और 'मासा जातस्य' यहाँ बहुवचनान्त] का समास नहीं हुआ । द्विगुसंज्ञक—[द्वौ मासौ जातस्य =] द्विमासजातः । यहाँ समास हो जाता है ।

अ० भाष्य भा० १ पृ० २३७ ।।

१६३–नञ् ॥ अ० २ । २ । ६ ॥

नञ् [जो अव्यय है वह] समर्थ सुबन्त के साथ [विकल्प] समास पावे सो नञ् तत्पुरुष हो [सो जिस पक्ष में समास होता है वहाँ नलोपो नञः, अ० ६ । ३ । ७३ । इससे नञ् के नकार का लोप होता है] जैसे—नब्राह्मणः = अब्राह्मणः । अवृषलः ।

१६४–तस्मान्नुडचि ॥ अ० ६ । ३ । ७४ ॥

तस्मात् नाम [अर्थात् उस] लोप हुये नञ् के नकार से परे अजादि उत्तरपद को नुट् का आगम हो । न अच् = अनच् । न अश्वः = अनश्वः । न उष्ट्रः = अनुष्ट्रः । इत्यादि ।

१६५–नञस्तत्पुरुषात् ॥ अ० ५ । ४ । ७१ ॥

जो नञ् से परे राज यात्रि शब्द सो अन्त में जिस तत्पुरुष के उससे समासान्त प्रत्यय न हों । अराजा । असखा । अगौः । तत्पुरुषादिति किम् ? अनृचो माणवकः । अधुरं शकटम् ।

१६६–पथो विभाषा ॥ अ० ५ । ४ । ७२ ॥

जो नञ् से परे पथिन् शब्द सो जिस तत्पुरुष के अन्त में हो उससे समासान्त प्रत्यय विकल्प करके हो अपथम्: अपन्थाः ।

१६७–ईषदकृता ॥ अ० २ । २ । ७ ॥

जो सुबन्त ईषत् शब्द कृत् वर्जित सुबन्त के साथ [वि०] समास को प्राप्त हो वह तत्पुरुष समास हो ।

१६८–वा०—ईषद्गुणवचनेनेति वक्तव्यम्[1] ॥

---

१. अकृता इसके स्थान में "गुणवचनेन" ऐसा कहना चाहिये क्योंकि 'अकृता' के कहने से 'ईषद्गार्ग्य' यहाँ भी समास पाता है । अर्थात् ईषद् अव्यय का गुणवचनवाची के साथ ही समास हो । इस नियम से कृदन्त का भी निषेध हो जावेगा । यह [इस] वार्तिक का प्रयोजन है ।

अष्टा० भा० भा० १, पृ० २३८ ॥

ईषत्कडारः । ईषत्पिङ्गलः । ईषद्विकारः । ईषदुन्नतः । ईषत्पीतम् । गुणवचनेनेतिकिम् ? ईषद्गार्ग्यः ।[1]

[षष्ठीतत्पुरुष]

१६९—षष्ठी ॥ अ० २ । २ । ८ ॥

षष्ठ्यन्त सुबन्त, समर्थ सुबन्त के साथ वि० समास पावे, सो षष्ठी तत्पुरुष जानो । राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः । राज्ञोः पुरुषौ=राजपुरुषौ । राज्ञां पुरुषः=राजपुरुषाः । राज्ञः पुरुषौ पुरुषा वा । ब्राह्मणकम्बलः ।

१७०—वा०—कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वक्तव्यम्[2] ॥

जैसे—[इध्मस्यप्रव्रश्चनः]=इध्म [प्र] व्रश्चनः । [पलाशस्य शातनः]=पलाशशातनः । किमर्थमिदमुच्यते ? प्रतिपदविधाना

---

१. यहाँ तक तत्पुरुष समास का प्रकरण आया इसके आगे षष्ठी तत्पुरुष का प्रकरण समझना चाहिये ।

२. "षष्ठी दो प्रकार की है कृद्योगा और प्रतिपदविधाना । कृद्योगा [षष्ठी] उसको कहते हैं, जो कृदन्त के योग में कर्त्ता कर्म में [कर्तृकर्मणोः कृति । अ० २ । ३ । ६५ ।] इस सूत्र में षष्ठी विधान है । उस षष्ठी का समास सुबन्त के साथ हो। जैसे यहाँ कृदन्त के योग में इध्म षष्ठ्यन्त का समास हुआ है ।"

"षष्ठी शेषे अ० २ । ३ । ५० । इस सूत्र से लेकर पाद पर्यन्त विहित षष्ठी तक इसका अधिकार होने से कृद्योगा षष्ठी को शेषलक्षणा-षष्ठी भी कहा जाता है । उस शेषलक्षणा षष्ठी से भिन्न अन्य सब षष्ठी प्रतिपद-विधाना षष्ठी है । अष्टा० भाष्य० पृ० २३८-२३९

षष्ठी न समस्यते इति वक्ष्यति[1] तस्यायं पुरस्तादपकर्षः [अपवादः इत्यर्थः] ।

१७१—याजकादिभिश्च[2] ।। अ० २ । २ । ९ ।।

षष्ठ्यन्त [शब्द] याजक आदि शब्द सुबन्तों [गणपाठ सूत्र १५] के साथ [वि०] समास पावे सो षष्ठी० । जैसे—ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः ।

१७२—षष्ठ्या आक्रोशे ।। अ० ६ । ३ । २१ ।।

आक्रोशे अर्थात् निन्दा अर्थ में उत्तरपद परे हो तो षष्ठी का अलुक् हो । जैसे—चौरस्य कुलम् । आक्रोश इति किम्? ब्राह्मणकुलम् ।

१७३—वा०—षष्ठीप्रकरणे वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु यथासंख्यमलुग्वक्तव्यः ।।

[षष्ठ्यन्त वाक्, दिक् और पश्यत् से परे क्रमशः युक्ति, दण्ड और हर हों तो षष्ठी का अलुक् हो] जैसे—वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ।

---

१. प्रयोजन यह है कि "न निर्धारणे" अ० २ । २ । १० ।। इस सूत्र पर प्रतिपदविधाना च षष्ठी न समस्यत इति वक्तव्यम्' इस वार्तिक द्वारा प्रतिपदविधाना षष्ठी के समास का जो निषेध कहा जायगा सो कृद्योगा षष्ठी के समास का न समझा जावे ।। अ० भा० के आधार से ।

[महाभाष्य में यहाँ दो वार्तिक और भी पठित हैं ।]

२. 'षष्ठी अ० २ । २ । ८ ।। सा०—१६९ ।। सूत्र से समास सिद्ध ही था । उसका 'कर्त्तरि च" अ० २ । २ । १६ ।। इससे प्रतिषेध प्राप्त होने पर उसके प्रतिषेध के लिये यह सूत्र है अर्थात् यह प्रतिषेध बाधक सूत्र है । अ० भा० के आधार से । सं० ।।

१७४-वा०—आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति चालुग् वक्तव्यः ॥

[आमुष्यायण,] आमुष्यपुत्रिका और आमुष्यकुलिका इनमें षष्ठी का अलुक् हो]। अमुष्यापत्यम् = आमुष्यायणः। नडादित्वात् फक् [गणपाठ सूत्र ४६]। अमुष्य पुत्रस्य भावः आमुष्यपुत्रिका। मनोज्ञादित्वाद् वुञ् [द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ गणपाठ सूत्र १२८] तथा आमुष्यकुलिकेति।

१७५-वा—देवानां प्रिय इत्यत्र च षष्ठ्या अलुग् वक्तव्यः ॥

['देवानां प्रियः' यहाँ भी षष्ठी का अलुक् हो]।

जैसे—देवानां प्रियः।

१७६-वा०—शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः संज्ञायां षष्ठ्या अलुग् वक्तव्यः ॥

[संज्ञा विषय में यदि षष्ठ्यन्त श्वन् शब्द से परे शेप, पुच्छ और लाङ्गूल हों तो षष्ठी का अलुक् हो]।
जैसे—शुनः शेपः। शुनः पुच्छः। शुनो लाङ्गूलः।

१७७-वा०—दिवश्च दासे षष्ठ्या अलुग् वक्तव्यः ॥

[षष्ठ्यन्त दिव् शब्द से परे दास शब्द हो तो षष्ठी अलुक् हो जैसे—] दिवोदासाय गायति।

१७८-पुत्रेऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ६। ३। २२॥

पुत्र उत्तरपद परे हो तो आक्रोश अर्थ में षष्ठी अलुक् विकल्प करके हो। जैसे—दास्याःपुत्रः। दासीपुत्रो वा। आक्रोश इति किम्? ब्राह्मणीपुत्रः।

१७९–ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः ।। अ० ६ । ३ । २३ ।।

ऋकारान्त विद्यासम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से परे षष्ठी का अलुक् हो । जैसे—होतुरन्तेवासी । होतुः पुत्रः । पितुरन्तेवासी । पितुः पुत्रः । ऋत इति किम् ? आचार्य्यपुत्रः । मातुलपुत्रः ।

[वा०—विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यस्तद् पूर्वपदोत्तरपदग्रहणं कर्त्तव्यम् । तेनेह न होतृधनम्] ।

१८०–विभाषा स्वसृपत्योः ।। अ० ६ । ३ । २४ ।।

ऋकारान्त विद्यासम्बन्धी और ऋकारान्त योनि सम्बन्धियों से स्वसृ तथा पति उत्तरपद परे हो तो वि० [से] षष्ठी का अलुक् हो । जैसे—मातुः ष्वसा । मातुः स्वसा । मातृष्वसा । पितुः ष्वसा । पितुः स्वसा । पितृष्वसा[1] । दुहितुः पतिः । दुहितृपतिः । ननान्दुः पतिः । ननान्दृपतिः ।

---

१. [जब लुक् हुआ तब "मातृपितृभ्यां स्वसा" अ० ८ । ३ । ८४ ।। इससे समास में स्वसृ के सकार का नित्य षत्व होकर 'मातृष्वसा' । 'पितृष्वसा' रूप बना । जब लुक् न हुआ तब 'मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ।।' अ० ८ । ३ । ८५ ।। इससे विकल्प से षत्व होकर 'मातुः ष्वसा' 'मातुः स्वसा' । पितुःष्वसा पितुः स्वासा, रूप बने यह नियम समास में समझना चाहिये क्योंकि अ० सू० ८ । ३ । ८० से समास की अनुवृत्ति उक्त सूत्रों में भी आ रही है । वाक्य में तो नित्य "मातुः स्वसा" "पितुः स्वसा" ऐसा ही रहेगा] ।

१८१–नित्यं क्रीडाजीविकयोः[1] ।। अ० २ । २ । १७ ।।

क्रीडा और जीविका अर्थ में षष्ठी [समर्थ] सुबन्त के साथ नित्य समास पावे । [सो तत्पुरुष समास हो] जैसे—(क्रीडा) उद्दालकपुष्पभञ्जिका । वारणपुष्पप्रचायिका । (जीविका) दन्तलेखकः । पुस्तकलेखकः । क्रीडाजीविकयोरिति किम् ? ओदनस्य भोजनकः[2] ।

१८२–कुगतिप्रादयः ।। अ० २ । २ । १८ ।।

कु अव्यय गतिसंज्ञक और प्रादि गणस्थ शब्द समर्थ सुबन्त के साथ [नित्य] समास को प्राप्त हों । जैसे—कु । कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः । गति । उररीकृतम् । यद्दूरीकरोति । प्रादयः [गणपाठ सूत्र ४] ।

१८३–वा०—दुर्निन्दायाम् ।।

[दुर् शब्द निन्दा अर्थ में समास को प्राप्त हो जैसे] दुष्पुरुषः । [दुष्कुलम् । दुर्गवः] ।

१८४–वा०—स्वती पूजायाम् ।।

सु और अति ये पूजा अर्थ में ही समास को प्राप्त हों । शोभनः पुरुषः=सुपुरुषः । अतिपुरुषः । [पूजनीय इत्यर्थः] ।

---

१. [कहीं एकदेश की भी अनुवृत्ति होती है अतः अक-की अनुवृत्ति आ रही है । काशिकाकार ने तृच् की अनुवृत्ति भी यहाँ लिखी है सो अशुद्ध ही है । और उनका 'तृजकाभ्यां कर्त्तरि' और 'कर्त्तरि च' इन सूत्रों का व्याख्यान भी महाभाष्य से विरुद्ध ही है । देखिये—

अष्टा० भा० १ पृ० २४३, २४४ ।।]

२. यहाँ तक षष्ठीतत्पुरुष आया इसके आगे पुनस्तत्पुरुष का प्रकरण चला है ।

१८५–वा०—आङीषदर्थे[1] ॥

[ईषत् अर्थात् थोड़े का वाची आङ् शब्द समास को प्राप्त हो जैसे—] आपिङ्गलः। आकडारः। दुष्कृतम्। अतिस्तुतम्। आबद्धम्।

१८६–वा०—प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया ॥

[प्रादि जो शब्द हैं, वे गत आदि अर्थों में प्रथमा विभक्ति के साथ समास को प्राप्त हों] प्रगत आचार्यः=प्राचार्यः। प्रान्तेवासी। [प्रापितामहः]।

१८७–वा०—अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥

[अति आदि जो शब्द हैं, वे क्रान्त आदि अर्थों में द्वितीया विभक्ति के साथ नित्य समास को प्राप्त हों] जैसे—अतिक्रान्तः खट्वाम्=अतिखट्वः। अतिमालः[2]।

१८८–वा०—अवादयः कुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥

---

१. [प्रायिकं चैतदुपाधिवचनम् अन्यत्रापि हि समासो दृश्यते। कोष्णम्। कदुष्णम्। कवोष्णम्। दुष्कृतम्। अतिस्तुतम्। आबद्धम्। इति उक्तं काशिकायाम्]॥

२. [यहाँ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते। अ० १। २। ४४॥ सा० ३३४॥ अष्टा० भाष्य० भाग १ पृ० १३४॥ इस सूत्र से खट्वा और माला शब्द की नियत द्वितीया विभक्ति के होने से उपसर्जन संज्ञा और 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' अ० १। २। ४८॥ इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञकस्त्रीप्रत्ययान्त खट्वा और माला शब्द को, ह्रस्व हो गया]।

[अवादि शब्द कुष्टादि अर्थों में तृ० विभक्ति के साथ नित्य समास को प्राप्त हों, जैसे]—अवकुष्टः कोकिलया = अवकोकिलः [वसन्तः] ।

१८९–वा०—पर्यादयो[1] ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ॥

[परि आदि शब्द ग्लान आदि अर्थों में चतुर्थी विभक्ति के साथ नित्य समास पावें] परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययनः । अलं कुमार्य्यै = अलंकुमारिः ।

१९०–वा—निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या ॥

क्रान्तादि अर्थ में निर् आदि शब्द पञ्चमी विभक्ति के साथ नित्य समास पावें जैसे—] निष्कान्तः कौशाम्ब्याः = निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । निष्क्रान्तः सभायाः = निःसभः । [यहाँ भी ऊपर के समान ही उपसर्जन संज्ञा और ह्रस्व हुआ है । ये सब १८३ से १९० तक सौनाग वार्तिक हैं] ।

१९१–वा०–प्रादिप्रसङ्गे कर्म्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः[2] ॥

[सूत्र से जो प्रादिकों का समास कहा है, वहाँ कर्मप्रवचनीय-संज्ञक प्रादिकों का समास न हो] वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत् साधुर्देवदत्तो मातरं प्रति । [यहाँ प्रति के प्रादि होने से समास प्राप्त था सो न हुआ] ।

१९२–उपपदमतिङ् ॥ अ० २ । २ । १९ ॥

जो तिङ् वर्जित उपपद है सो समर्थ सुबन्त के साथ नित्य

---

१. न्यास में पर्यादि आकृतिगण कहा है ।

२. इनके अतिरिक्त महाभाष्य में और भी वार्त्तिक इस सूत्र पर हैं, जिज्ञासुजन वहाँ देखने का कष्ट करें ।

समास को प्राप्त हो सो तत्पुरुष समास हो। जैसे कुम्भं करोतीति] कुम्भकारः। नगरकारः। इत्यादि। [अतिङ् इति किम्? कारको व्रजति। यहाँ उपपद तिङन्त समास को प्राप्त न हुआ]।

१९३—न पूजनात् ॥ अ० ५।४।६९॥

पूजनवाची से परे समासान्त प्रत्यय न हो[1]। जैसे—सुराजा। अतिराजा। सुसखा। अतिसखा। सुगौः। अतिगौः।

१९४—अमैवाव्ययेन ॥ अ० २।२।२०॥

जो उपपद [का] अव्यय के साथ समास हो तो अम् [अमन्त] अव्यय ही के साथ अन्य के सङ्ग नहीं। स्वादुंकारं भुङ्क्ते। लवणंकारं भुङ्क्ते। संपन्नंकारं भुङ्क्ते। अमैवेति किम्। नेह भवति कालो भोक्तुम् [यहाँ तुमुन् प्रत्ययान्त से समास न हुआ] एवकारकरणमुपपदविशेषणार्थम्। अमैव यत्तुल्यविधानमुपपदं तस्य समासो यथा स्यात्। अमा चान्येन च यत्तुल्यविधानं तस्य माभूत्। अग्रेभुक्त्वा। अग्रेभोजम्[2]।

---

१. [जिन शब्दों से समासान्त प्रत्ययों का [राजाहस्सखिभ्यष्टच् इत्यादि] विधान है वे जब पूजनवचन से परे हों तो उनसे समासान्त प्रत्यय न हो "पूजायां, स्वति ग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥ इस वार्त्तिक से यह नियम सु अति के लिये है। अतः परमराजः। परमगवः। यहाँ समासान्त प्रत्यय हुआ है]

२. यहाँ एक सूत्र में [विभाषाऽग्रे प्रथमपूर्वेषु। अ० ३।४।२४] क्त्वा और णमुल् दो प्रत्ययों का विधान है। इससे 'अग्रे' इस उपपद का 'भोज' इस अमन्त के साथ समास नहीं हुआ।

अ० भा० भा० १ पृष्ठ २५०॥

१९५–तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् ॥ अ० २ । २ । २१ ॥

(उपदंशस्तृतीयायाम् [अ० ३ । ४ । ४७ ॥]) । यहां से ले के जो उपपद हैं वे अम् अव्यय के साथ वि० समास को प्राप्त हों सो तत्पुरुष समास हो । मूलकोपदंशं भुङ्क्ते । मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते । उच्चैःकारं समाचष्टे । उच्चैःकारेण वा । अमैवेत्येव । पर्य्याप्तो भोक्तुम् । प्रभुर्भोक्तुम् । समर्थो भोक्तुम् । [यहां] पर्य्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु[1] ॥ अ० ३ । ४ । ६६ ॥ इससे तुमुन् प्रत्यय हुआ और तुमुन् प्रत्ययान्त के साथ समर्थ उपपद का विकल्प करके समास न हुआ] ।

१९६–क्त्वा च[2] ॥ अ० २ । २ । २२ ॥

तृतीया प्रभृति शब्द क्त्वा प्रत्यय के साथ समास को प्राप्त वि० हों । [सो समास तत्पुरुष हो] । उच्चैःकृत्य । उच्चैःकृत्वा ।

१९७–[3] शेषो बहुव्रीहिः ॥ अ० २ । २ । २३ ॥

शेष अर्थात् उक्त समासों को छोड़ के जो आगे समास कथन

---

१. [यहां गत संस्करणों में एक बड़ी अशुद्धि छप रही थी उसे अब शुद्ध कर दिया गया है] ॥ सं० ॥

२. पूर्वसूत्र में अमन्त की अनुवृत्ति आने से अन्यत्र समास नहीं पाता था, इसलिये यह सूत्र है । इसमें तृतीयाप्रभृति ग्रहण इसलिये है कि 'अलं भुक्त्वा ।' 'खलूक्त्वा' यहां समास के न होने से ल्यप् भी न हुआ ।
अष्टा० भा० भा० १ पृ० २५१ ॥

३. यहां तक कुगति और प्रादि प्रयुक्त तत्पुरुष समास आया, इसके आगे बहुव्रीहि का अधिकार चला है ।

करते हैं सो बहुव्रीहि है[1]। यह अधिकार सूत्र भी है।

१६८–अनेकमन्यपदार्थे ॥ अ० २ । २ । २४ ॥

जो अन्य पद के अर्थ में वर्त्तमान अनेक सुबन्त सो सुबन्त के सङ्ग समास को प्राप्त हो, उसको बहुव्रीहि जानो।[2] विशाले नेत्रे यस्य स 'विशालनेत्रः।' बहु धनं यस्य स 'बहुधनो' 'बहुधनको' वा पुरुषः। एक प्रथमा विभक्ति के अर्थ को छोड़ कर सब विभक्ति के अर्थों में बहुव्रीहि समास होता है। प्राप्तमुदकं यं ग्रामं स 'प्राप्तोदको ग्रामः'। ऊढो रथो येन स 'ऊढरथोऽनड्वान्'। उपहृतमुदकं यस्मै स 'उपहृतोदकोऽतिथिः'। उद्धृत ओदनो यस्याः सा 'उद्धृतौदना स्थाली।' अच् अन्तो यस्य स 'अजन्तो धातुः।' वीराः पुरुषा यस्मिन् ग्रामे स 'वीरपुरुष [वीरपुरुषको वा] ग्रामः।' परन्तु प्रथमा के अर्थ में नहीं होता है। वृष्टे मेघे गतः। अनेकग्रहणं किम्? बहुनामपि यथा स्यात्। सुसूक्ष्मजटकेशः। इत्यादि।

१९९–वा०—बहुव्रीहिः समानाधिकरणानामिति वक्तव्यम् ॥

[समानाधिकरण शब्दों का बहुव्रीहि समास होना चाहिये]। व्यधिकरणानां मा भूत्। पञ्चभिर्भुक्तमस्य। [यहां विभक्तिभेद होने से समास नहीं हुआ]।

---

१. "यस्य त्रिकस्यानुक्तः समासः स शेषः। कस्य चानुक्तः? प्रथमायाः॥"
महाभाष्य २। २। १॥

२. इस बहुव्रीहि समास के विग्रह में प्रथमा और अन्यपदार्थ में द्वितीया आदि विभक्तियों के प्रयोग होते हैं। जैसे नेत्र शब्द प्रथमा और यत् शब्द से षष्ठी हुई है। वैसे सर्वत्र समझो।

२००–वा०—अव्ययानां च बहुव्रीहिर्वक्तव्यः[1] **॥**

[अव्ययों का अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास हो]। उच्चैर्मुखः। नीचैर्मुखः।

२०१–वा०—सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च ॥

[सप्तमी विभक्ति जिसके पूर्व और उपमानवाची शब्द जिसके पूर्व हो उस पद का समास अन्य पद के साथ हो और उत्तर पद का लोप हो जावे]। कण्ठे स्थितः कालो यस्य=कण्ठेकालः। उरसिलोमा। उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं यस्य=स उष्ट्रमुखः। खरमुखः।

२०२–वा०—समुदायविकारषष्ठ्याश्चबहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्चेति वक्तव्यम् ॥

[समुदाय अवयव के सम्बन्ध और प्रकृतिविकार के सम्बन्ध में जो षष्ठी उससे परे जो उत्तरपद उसका लोप और अन्य शब्दों के साथ बहुव्रीहि समास होता है]। केशानां संघातः=केशसंघातः, केशसंघातश्चूडाऽस्य=स केशचूडः [यहां समाहार उत्तरपद का लोप]। सुवर्णविकारोऽलङ्कारोऽस्य=स सुवर्णाऽलङ्कारः [यहां विकार उत्तरपद का लोप]।

२०३–वा०—प्रादिभ्यो धातुजस्योत्तरपदलोपश्च वा बहुव्रीहिर्वक्तव्यः ॥

[प्रादि उपसर्गों से परे जो धातुज उत्तरपद, उसका विकल्प से लोप और [नित्य] बहुव्रीहि समास हो]। प्रपतितं पर्णमस्य=

---

१. [यहां 'उच्चैः, नीचैः' अव्ययों के अधिकरण प्रधान होने से सामानाधिकरण्य नहीं, इससे समास नहीं पाता है इसलिये यह वार्त्तिक कहा।]

प्रपर्णः, [प्रपतितपर्णः] । प्रपतितं पलाशमस्य = प्रपलाशः, [प्रपतितपलाशः] ।

२०४–वा०––नञोऽस्त्यर्थानां बहुव्रीहिर्वा चोत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः ॥

[नञ् से परे जो अस्त्यर्थ उत्तरपद, उनका विकल्प करके लोप और [नित्य] बहुव्रीहि समास हो] । अविद्यमानः पुत्रो यस्य सोऽपुत्रः, [अविद्यमानपुत्रः] । अविद्यमाना भार्य्या यस्य सोऽभार्यः, अविद्यमानभार्य्यः ।

२०५–वा०––सुबधिकारेऽस्तिक्षीरादीनां बहुव्रीहिर्वक्तव्यः[1] ॥

[इस सुबन्तों के समास के अधिकार में अस्तिक्षीरा आदि शब्दों का भी समास हो] । [अस्तिक्षीरमस्याः] = अस्तिक्षीरा ब्राह्मणी । अस्त्यादयो निपाताः ।

२०६–स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ अ० ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितः पुमान् येन स भाषितपुंस्कः तस्मात् । भाषित, पुँल्लिङ्ग से परे ऊङ् वर्जित जो स्त्री शब्द उसको पुंवत् हो अर्थात् उसका पुँल्लिङ्ग के सदृश रूप होता है, समानाधिकरण स्त्रीलिङ्ग वाची उत्तरपद परे हो तो; परन्तु पूरणी तथा प्रियादि को छोड़ के । दर्शनीया भार्या यस्य = स दर्शनीयभार्यः । रूपवद्भार्यः । श्लक्ष्ण-चूडः । पूर्णा विद्या यस्याः = सा पूर्णविद्या । विदिता नीतिर्यया = सा

---

१. यहां अस्ति-शब्द क्रियावाची तिङन्त है । इससे समास नहीं पाता था, क्योंकि सुबन्तों का समास सुबन्तों के साथ होता है, इसलिये यह वार्त्तिक है । अष्टा० भा० भा० १ पृ० २५४ ॥

विदितनीतिः। सुशिक्षिता वाणी यस्याः=सा सुशिक्षितवाणी। स्त्रिया इति किम्? ग्रामणि ब्राह्मणकुलं दृष्टिरस्य=ग्रामणिदृष्टिः। भाषितपुंस्कादिति किम्? खट्वाभार्यः। अनूङिति किम्। ब्रह्मबन्धूभार्यः। समानाधिकरण इति किम्? कल्याण्या माता=कल्याणीमाता। स्त्रियामिति किम्। कल्याणीप्रधानमेषां कल्याणीप्रधाना इमे। अपूरणीति किम्? कल्याणी पञ्चमी यासां [रात्रीणाम्]=ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः [रात्रयोऽत्र प्रधानम्]। कल्याणीदशमाः।

२०७–वा०–[पूरण्यां] प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

[यहां जो पूरणी का प्रतिषेध कहा है वह प्रधान पूरणी का जानना चाहिये।] इह माभूत्। कल्याणपञ्चमीकः पक्ष इति [यहां पुंवद्भाव हो गया]। अप्रियादिष्विति किम्? कल्याणीप्रियः।

२०८–दिङ् नामान्यन्तराले ॥ अ० २।२।२६ ॥

जो अन्तराल अर्थ में दिक् नाम [वाची][1] सुबन्त शब्द, सुबन्त के साथ समास को प्राप्त हों सो बहुव्रीहि समास है। मध्य कोण को अन्तराल कहते हैं। दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं दिक् सा=दक्षिणपूर्वा दिक्। पूर्वोत्तरा। उत्तरपश्चिमा। पश्चिमदक्षिणा[2]।

---

१. इस सूत्र में नाम ग्रहण रूढि अर्थ में है। अर्थात् लोक में जो प्रसिद्ध दिग्वाची शब्द हैं, उन्हीं का इससे ग्रहण होता है। इसलिये 'ऐन्द्रयाश्च कौबेर्याश्च दिशोर्यदन्तरालम्' यहां पर समास न हुआ। क्योंकि ये रूढि नहीं अपि तु यौगिक हैं। इन्द्रस्येयमैन्द्री कुबेरस्येयं कौबेरी ॥ इति न्यासः ॥

२. सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावो वक्तव्यः ॥ इस वार्त्तिक से समास मात्र में सर्वनामवाची पूर्वपद को पुंवद्भाव हो जाता है। जैसे – पश्चिमस्याश्च दक्षिणस्याश्चान्तराला दिक्='पश्चिमदक्षिणा' इत्यादि ॥ सं० ॥

२०९—संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसङ्ख्याः संख्येये ॥

अ० २ । २ । २५ ॥

जो संख्येय में वर्तमान अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और सङ्ख्या, सुबन्त के साथ समास पावे वह समास बहुव्रीहि हो[1]। (अव्यय) दशानां समीपे उपदशाः । उपविंशाः । [आसन्न] आसन्नदशाः । [अदूर] अदूरग्रामा वृक्षाः । [अधिक] अधिकविंशाः[2] । (संख्या) द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः । त्रिचतुराः । द्विदशाः । संख्ययेति किम् ? पञ्च ब्राह्मणाः । अव्ययासन्नादूराधिकसंख्या इति किम् ? ब्राह्मणाः पञ्च । संख्येय इति किम् ? अधिका विंशतिर्गवाम्[3] ।

२१०—बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ॥ अ० ५ । ४ । ७३ ॥

[बहुगण को छोड़ कर] जो संख्येय में वर्त्तमान बहुव्रीहि उससे समासान्त डच् प्रत्यय हो। जैसे—उपदशाः । उपविंशाः । उपत्रिंशाः । आसन्नदशाः । अदूरदशाः । [अधिकदशाः] । [द्वित्राः] । संख्येय इति किम् ? चित्रगुः । शबलगुः । अबहुगणादिति किम् ? उपबहवः । उपगणाः[4] ।

---

१. अव्यय, आसन्न, अदूर, अधिक और संख्या ये शब्द [संख्येये] गणना करने अर्थ में वर्त्तमान जो [संख्यया] संख्या है उसके साथ समास पावें। और वह समास बहुव्रीहिसंज्ञक हो। अष्टा० भाष्य० ॥

२. [विंशानामधिकाः अधिकविंशास्ते पुनरेकविंशादयः] ॥

३. विंशति शब्दोऽत्रसंख्यान एव वर्त्तते न तु संख्येये द्रव्ये । इति न्यासकारः ॥

४. ["उपगणाः" यहां डच् होने वा न होने पर भी रूप समान रहता है अतः इसका ज्ञान स्वर से होता है, अर्थात् डच् होने पर अन्तोदात्तत्व और न होने पर पूर्वपदप्रकृतिस्वर आद्युदात्त हो जाता है]।

२११–वा०–डच् प्रकरणे संख्यायास्तत्पुरुषस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यं निस्त्रिंशाद्यर्थम् ॥

[डच् प्रकरण में संख्यान्त तत्पुरुष से समासान्त डच् प्रत्यय गृहीत हो, निस्त्रिंशादि शब्दों के साधनार्थ]। निर्गतानि त्रिंशतः। निस्त्रिंशानि वर्षाणि देवदत्तस्य। निश्चत्वारिंशानि यज्ञदत्तस्य। निर्गतस्त्रिंशताङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः।

२१२–तत्र तेनेदमिति सरूपे ॥ अ० २। २। २७॥

इदम् अर्थ में [अर्थात् कर्मव्यतिहार अर्थ में] सप्तम्यन्त सरूप और तृतीयान्त सरूप, सुबन्त के साथ समास पावे सो बहुव्रीहि हो[1]। [उदाहरण अगले सूत्र में देखें]।

२१३–इच् कर्मव्यतिहारे ॥ अ० ५। ४। १२७॥

कर्म के व्यतिहार अर्थ में जो बहुव्रीहि उससे समासान्त इच् प्रत्यय हो। और तिष्ठद्गुप्रभृति में इच् पढ़ा भी है इसलिये अव्यय जानना। केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि। दण्डैर्दण्डैः प्रहृत्येदं युद्धं प्रवर्त्तते तत् दण्डादण्डि।

२१४–अन्येषामपि दृश्यते ॥ अ० ६। ३। १३७॥

जिस शब्द को दीर्घादेश विधान कहीं न किया हो उसको दीर्घत्व इस सूत्र से जानिये। केशाकेशि। दण्डादण्डि। इत्यादि।

---

१. [तत्र] अर्थात् सप्तम्यन्त और [तेन] अर्थात् तृतीयान्त [सरूपे] समानरूप वाले जो दो दो पद हैं, वे [इदमिति] अर्थात् कर्मव्यतिहार अर्थ में परस्पर समास को प्राप्त हों। वह समास बहुव्रीहिसंज्ञक हो॥ सरूप ग्रहण इसलिये है कि "दण्डैश्च मुसलैश्चेदं युद्धं प्रवृत्तम्" यहां समास न हो। अष्टा० भाष्य० भा० १ पृ० २५६॥

२१५–द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ५ । ४ । १२८ ॥

इच् प्रत्ययान्त द्विदण्डि, द्विमुसलि इत्यादि निपातन किये हैं ।

२१६–तेन सहेति तुल्ययोगे[1] ॥ अ० २ । २ । २८ ॥

तुल्य योग [एक क्रिया में योग होना तुल्ययोग कहाता है] अर्थ में सह शब्द तृतीयान्त सुबन्त के साथ समास पावे सो बहुव्रीहि हो ।

२१७–वोपसर्जनस्य ॥ अ० ६ । ३ । ८२ ॥

जो उपसर्जन अर्थ में वर्त्तमान [अर्थात् बहुव्रीह्यवयववाचक] सह शब्द उसको स आदेश विकल्प करके हो । पुत्रेण सहागतः पिता=सपुत्रः [यहां आगमन क्रिया में दोनों का तुल्ययोग है] । सहपुत्रः । सच्छात्र आचार्यः । सहच्छात्रो वा । सकर्मकरः । सहकर्मकरो वा । तुल्ययोग इति किम् ? सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभो । उपसर्जनस्येति किम् ? सहकृत्वा । सहयुध्वा ।

२१८–प्रकृत्याशिष्यगोवत्सहलेषु[2] ॥ अ० ६ । ३ । ८३ ॥

आशीर्वाद अर्थ में उत्तरपद परे हो तो गो, वत्स और हल इनको वर्ज के सह शब्द प्रकृति करके रहे अर्थात् स आदेश न हो । स्वस्ति देवदत्ताय सह पुत्राय । सहच्छात्राय । सहामात्याय । आशिषीति किम् ? सानुगाय दस्यवे दण्डं दद्यात् । सहानुगाय वा । अगोवत्सहलेष्विति किम् ? स्वस्ति भवते सहगवे । सगवे । सहवत्साय । सवत्साय । सहहलाय । सहलाय । वोपसर्जनस्येति पक्षे भवत्येव समासः ।

---

१. [महाभाष्य में यह सूत्र 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' अ० २ । २ । ३७ के पूर्व पढ़ा है] ।

२. 'प्रकृत्याशिषि' इति सूत्रम् । "अगोवत्सहलेष्विति भाष्यवार्त्तिकदर्शनात्सूत्रे केनचित्प्रक्षिप्तमिति कैयटः" ॥ सं० ॥

२१९–समानस्य छन्दस्यमूर्द्धप्रभृत्युदर्केषु ।। अ० ६ । ३ । ८४ ।।

जो मूर्द्ध प्रभृति और उदर्क वर्जित उत्तर परे हो तो समान शब्द को स आदेश हो [छन्द विषय में] । अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । अमूर्द्धप्रभृत्युदर्केष्विति किम् ? समानमूर्द्धा । समानप्रभृतयः । समानोदर्काः ।

२२०–बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् ।।

अ० ५ । ४ । ११३ ।।

बहुव्रीहि समास में स्वाङ्गवाची सक्थि और अक्षि शब्द से समासान्त षच् प्रत्यय हो । जैसे—दीर्घसक्थः । कल्याणाक्षः । लोहिताक्षः । जो स्त्री हो तो षित् होने से ङीप् प्रत्यय होता । दीर्घसक्थी । कल्याणाक्षी । इत्यादि । बहुव्रीहाविति किम् ? परमसक्थि । परमाक्षि । सक्थ्यक्ष्णोरिति किम् ? दीर्घजानुः । सुबाहुः । स्वाङ्गादिति किम् । दीर्घसक्थिशकटम् । स्थूलाक्षिरिक्षुः ।

२२१–अङ्गुलेर्दारुणि ।। अ० ५ । ४ । ११४ ।।

दारु अर्थ में अङ्गुलि शब्दान्तबहुव्रीहि समास से समासान्त षच् प्रत्यय हो । द्वे अङ्गुली यस्य द्वयङ्गुलम् । त्र्यङ्गुलम् । चतुरङ्गुलं दारु । दारुणीति किम् ? पञ्चाङ्गुलिर्हस्तः ।

२२२–द्वित्रिभ्यां ष मूर्द्धनः ।। अ० ५ । ४ । ११५ ।।

द्वि और त्रि से परे मूर्द्धन् शब्द से बहुव्रीहि समास में समासान्त ष प्रत्यय हो । जैसे—द्विमूर्द्धः त्रिमूर्द्धः । द्वित्रिभ्यामिति किम् ? उच्चैर्मूर्द्धा ।

२२३–अप् पूरणीप्रमाण्योः ।। अ० ५ । ४ । ११६ ।।

जो पूरण प्रत्ययान्त और प्रमाणी शब्दान्त बहुव्रीहि उससे समासान्त अप् प्रत्यय हो । जैसे-कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम् = ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । कल्याणीदशमा रात्रयः । स्त्रीप्रमाणी

येषां ते स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः । भार्याप्रधाना इत्यर्थः ।

२२४–वा०—[अपि] प्रधानपूरणीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

इह माभूत् । कल्याणी पञ्चमी अस्मिन् पक्षे कल्याणपञ्चमीकः ।

२२५–वा०—नेतुर्नक्षत्र उपसंख्यानम् ॥

(नक्षत्र अर्थ में वर्त्तमान जो नेतृ शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय हो) मृगो नेता आसां रात्रीणां ता मृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः । नक्षत्र इति किम् ? देवदत्तनेतृकाः ।

२२६–वा—छन्दसि च नेतुरुपसंख्यानम् ॥

विद्याधर्मनेत्रा देवा : । सोमनेत्राः ।

२२७–वा०—मासात् [भृति] प्रत्ययपूर्वपदात् ठञ् [ठञ्] विधिः ॥

(भृतिप्रत्यय पूर्वपद के जिसके उस मास शब्द बहुव्रीहि समास में ठच् विधि हो) पञ्चको मासोऽस्य पञ्चकमासिकः कर्मकारः । दशकमासिकः ।

२२८–अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ॥ अ० ५ । ४ । ११७ ॥

अन्तर और बहिस् शब्द से परे जो लोमन् शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अप् प्रत्यय हो । जैसे—अन्तर्गतानि लोमान्यस्यान्तर्लोमः प्रावारः । बहिर्गतानि लोमान्यस्य स बहिर्लोमः पटः ।

२२९–अञ् नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ॥

अ० ५ । ४ । ११८ ॥

नासिकान्त बहुव्रीहि समास से अच् प्रत्यय हो और संज्ञा अर्थ में नासिका के स्थान में नस् आदेश हो [यदि स्थूल शब्द से परे नासिका न हो तो] । द्रुरिव नासिकाऽस्य द्रुणसः । वार्ध्रीणसः ।

गौनसः । संज्ञायामिति किम् ? तुङ्गनासिकः । अस्थूलादिति किम् ? अस्थूलनासिको वराहः ।

२३०–वा०—खुरखराभ्यां नस् वक्तव्यः[1] ॥

खुरणाः । खरणाः । पक्ष में अच् प्रत्यय भी इष्ट है । खुरणसः । खरणसः ।

२३१–उपसर्गाच्च ॥ अ० ५ । ४ । ११९ ॥

उपसर्ग से परे जो नासिका शब्द तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय हो और नासिका को नस् आदेश भी हो । जैसे—उन्नता नासिका अस्य स उन्नसः । प्रगता नासिका अस्य प्रस्य प्रणसः ।

२३२–वा०–वेर्ग्रो वक्तव्यः ॥

विपूर्वक नासिका के स्थान में ग्र आदेश और अच् प्रत्यय भी हो । विगता नासिका अस्य स विग्रः ।

२३३–सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः ॥

अ० ५ । ४ । १२० ॥

इसमें सुप्रात इत्यादि बहुव्रीहि समास और अच् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं । जैसे—शोभनं प्रातरस्य=सुप्रातः । शोभनं

---

१. ऐसा ही पाठ काशिका में है ।
"खुरखराभ्यां वा नस्" ऐसा सि० कौमुदी में है ।
महाभाष्य में "खरखुराभ्यां च नस् वक्तव्यः", इस प्रकार पाठ है । और आगे "शितिना अर्चना अहिना इति नैगमाः" इससे शितिनाः [शितिर्नासिकाऽस्य शितिनाः] अर्चनाः [अर्चा=प्रतिमा] [अर्चेव नासिकास्या अर्चनाः ।] । अहिनाः [अहिरिव नासिकास्याहिनाः] ये वैदिक शब्द सिद्ध किये हैं ॥ सं० ॥

श्वोऽस्य = सुश्वः । शोभनं दिवा अस्य = सुदिवः । शारिरिव कुक्षिरस्य = शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य = स चतुरश्रः । एण्या इव पादावस्य = एणीपदः । अजस्येव पादावस्य = अजपदः । प्रोष्ठो गौस्तस्येव पादवस्य = प्रोष्ठपदः ।

२३४–नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम् ॥

अ० ५ । ४ । १२१ ॥

नञ्, दुस् और सु इन से परे जो हलि और सक्थि तदन्त बहुव्रीहि से समासान्त अच् प्रत्यय विकल्प करके हो । जैसे—अविद्यमाना हलिरस्य अहलः । अहलिः । दुर्हलः । दुर्हलिः । सुहलः । सुहलिः । अविद्यमानं सक्थ्यस्य असक्थः । असक्थिः । दुःसक्थः । दुःसक्थि । सुसक्थः । सुसक्थिः ।

२३५–नित्यमसिच् प्रजामेधयोः ॥ अ० ५ । ४ । १२२ ॥

नञ्, दुस् और सु से परे प्रजा और मेधा तदन्त बहुव्रीहि से नित्य ही समासान्त असिच् प्रत्यय हो । जैसे—अविद्यमाना प्रजाऽस्य = अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अविद्यमाना मेधाऽस्य = अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः । नित्य ग्रहण इसलिये है कि पूर्वसूत्र के विकल्प से दो प्रयोग न हों ।

२३६–बहुप्रजाश्छन्दसि ॥ अ० ५ । ४ । १२३ ॥

बहुप्रजाः । यह वेद में निपातन किया है ("बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश" अथर्व० ९ । १० । १०) । छन्दसीति किम् ? बहुप्रजो ब्राह्मणः ।

२३७–धर्मादनिच् केवलात् ॥ अ० ५ । ४ । १२३ ॥

केवल अर्थात् एक ही शब्द से परे जो धर्म शब्द उससे समासान्त अनिच् प्रत्यय हो । जैसे—कल्याणो धर्मोऽस्य कल्याणधर्मा । प्रियधर्मा । केवलादिति किम् । परमः स्वो धर्मोऽस्य = परमस्वधर्मः ।

२३८—जम्भासुहरिततृणसोमेभ्यः ।। अ० ५ । ४ । १२५ ।।

[बहुव्रीहि समास में] सु, हरित, तृण और सोम शब्द से परे यह जम्भा शब्द निपातन किया है, जम्भा नाम मुख्य दांतों का और खाने योग्य वस्तु का भी है । शोभनो जम्भोऽस्य सुजम्भा देवदत्तः । हरितजम्भा । तृणजम्भा । सोमजम्भा [दन्तवचने तृणमिव जम्भोऽस्य, सोम इव जम्भोऽस्येति विग्रहीतव्यम् । सुहरिततृणसोमेभ्य इति किम् ? पतितजम्भः] ।

२३९—दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे । अ० ५ । ४ । १२६ ।।

दक्षिणेर्मा समासान्त निपातन किया है [ब० समास में] लुब्धयोग अर्थ में । लुब्ध नाम व्याध का है । दक्षिणेर्म व्रणमस्य दक्षिणेर्मा मृगः[1] । ईर्म व्रणमुच्यते । दक्षिणमङ्गं व्रणितमस्य व्याधेनेत्यर्थः । लुब्धयोग इति किम् ? दक्षिणेर्म शकटम् ।

२४०—प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ।। अ० ५ । ४ । १२९

प्र और सम् से परे जानु शब्द को समासान्त ज्ञ आदेश हो [बहुव्रीहि में] । जैसे—प्रकृष्टे संसृष्टे च जानुनी अस्य 'प्रज्ञुः, संज्ञुः' ।

२४१—ऊर्ध्वाद् विभाषा ।। अ० ५ । ४ । १३० ।।

उर्ध्व शब्द से परे जानु शब्द को विकल्प करके ज्ञु आदेश हो [बहुव्रीहि में] जैसे—उर्ध्वे ज्ञानुनी अस्य = ऊर्ध्वज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः ।

२४२—ऊधसोऽनङ् ।। अ० ५ । २ । १३१ ।।

ऊधस्[2] शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त अनङ् आदेश

---

१. जिस मृग के दक्षिण पार्श्व में बाण आदि से क्षत किया हो उसको दक्षिणेर्मा कहते हैं, क्योंकि ईर्म क्षत का नाम है ।

२. थनों के ऊपर जो दूध का स्थान अर्थात् एन है उसको ऊधस् कहते हैं ।

हो। जैसे- कुण्डमिवोधोऽस्याः = कुण्डोध्नी [बहुव्रीहेरूधसोङीष् अ० ४।१।२५ से ङीष्]। घटोघ्नी गौः।

२४३—वा०—ऊधसोऽनङि स्त्रीग्रहणं कर्त्तव्यम् ॥

[ऊधस् शब्दान्त बहुव्रीहि को समासान्त अनङ् आदेश हो स्त्रीलिङ्ग में अभिधेय हो तो] इह माभूत्। महोधाः पर्जन्यः। घटोधो धैनुकम्।

२४४—धनुषश्च ॥ अ० ५।४।१३२ ॥

धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङ् आदेश हो। जैसे—[1]शार्ङ्गं धनुरस्य = शार्ङ्गधन्वा। खाण्डीवधन्वा। पुष्पधन्वा। अधिज्यधन्वा।

२४५—वा संज्ञायाम् ॥ अ० ५।४।१३३ ॥

संज्ञाविषय में धनुः शब्दान्त बहुव्रीहि को विकल्प करके अनङ् आदेश हो। जैसे—[2]शतधनुः। शतधन्वा। दृढधनुः। दृढधन्वा।

२४६—जायाया निङ् ॥ अ० ५।४।१३४ ॥

जायान्त बहुव्रीहि को समासान्त निङ् आदेश हो। युवतिर्जायाऽस्य = युवजानिः। वृद्धजानिः।

२४७—गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ॥ अ० ५।४।१३५ ॥

[बहुव्रीहि समास में] उत्, पूति, सु और सुरभि शब्दों से परे गन्ध शब्द को समासान्त इत् आदेश हो। उद्गतो गन्धोऽस्य = उद्गन्धिः। पूतिगन्धिः। सुगन्धिः। सुरभिगन्धिः। एतेभ्य इति किम्? तीव्रगन्धो वातः।

---

१. शार्ङ्ग आदि धनुष् के विशेष नाम हैं।

२. शतधनु आदि किसी पुरुष विशेष के नाम हैं।

२४८–वा०—गन्धस्येत्त्वे तदेकान्तग्रहणम् ।।

गन्ध शब्द को इत्त्व विधान में उसी का अवयव हो तो इत्त्व होता है, यहां नहीं होता[1] । शोभनो गन्धोऽय=सुगन्ध आपणः ।

२४९–अल्पाख्यायाम् ।। अ० ५ । ४ । १३६ ।।

अल्प अर्थ में वर्त्तमान बहुव्रीहि समासान्त गन्ध को इत् आदेश हो । जैसे—सूपोऽल्पोऽस्मिन्=सूपगन्धि भोजनम् । अल्पमस्मिन् भोजने घृतं=घृतगन्धि । क्षीरगन्धि । तैलगन्धि । दधिगन्धि । तक्रगन्धि । इत्यादि । [अल्पपर्यायो गन्धशब्दः] ।

२५०–उपमानाच्च ।। अ० ५ । ४ । १३७ ।।

उपमान वाची से परे गन्ध शब्द को इत् आदेश हो । पद्मस्येव गन्धोऽस्य=पद्मगन्धि । उत्पलस्येव गन्धोऽस्य पुष्पस्य=तदुत्पलगन्धि करीषगन्धि । कुमदगन्धि ।

२५१–पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ।। अ० ५ । ४ । १३८ ।।

बहुव्रीहि समास में हस्ति आदि [गणपाठ सूत्र १५४ पठित] शब्दों को छोड़ के उपमान वाची शब्द से परे पाद शब्द के अकार लोप हो । व्याघ्रस्येव । पादावस्य शुनः=स व्याघ्रपात् । सिंहपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् ? हस्तिपादः । कटोलपादः ।

२५२–कुम्भपदीषु च ।। अ० ५ । ४ । १३९ ।।

---

१. गन्ध शब्द सामान्य से गुण का नाम है सो जहां इस शब्द को द्रव्य की विवक्षा न हो वहीं इत् आदेश हो और जहां विशेष द्रव्य की विवक्ष में अन्य पदार्थ समास हो वहां इत् आदेश न हो । जैसे—सुगन्ध आपणः । सुन्दर गन्धयुक्त दुकान ।

कुम्भपदी आदि शब्दों में पाद शब्द के अकार का लोप निपातन से किया है। कुम्भपदी। शतपदी। अष्टापदी। इत्यादि।

२५३–संख्यासुपूर्वपदस्य च ॥ अ० ५। ४। १४० ॥

बहुव्रीहि समास में संख्या और सु पूर्वक पद शब्द के अकार का लोप हो। द्वौ पादावस्य = द्विपात्। त्रिपात्। चतुष्पात्। शोभनौ पादावस्य = सुपात्।

२५४–वयसि दन्तस्य दतृ ॥ अ० ५। ४। १४१ ॥

संख्या और सुपूर्वक बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेश हो [वयस् गम्यमान हो तो] द्वौ दन्तावस्य द्विदन्। त्रिदन्। चतुर्दन्। शोभना दन्ता अस्य = सुदन् कुमारः। वयसीति किम्? द्विदन्तो कुञ्जरः।

२५५–छन्दसि च ॥ अ० ५। ४। १४२ ॥

वेद में बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेश हो। जैसे—पत्रदन् तमालभेत्। उभयदत आलभते।

२५६–स्त्रियां संज्ञायाम् ॥ अ० ५। ४। १४३ ॥

जहां स्त्री की संज्ञा करना हो [अर्थात् स्त्रीलिङ्ग में संज्ञा गम्यमान हो तो] वहां बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को दतृ आदेश हो। [अय इव दन्ता अस्या =] आयोदती। फालदती। संज्ञायामिति किम्? समदन्ती। स्निग्धदन्ती ॥।

२५७–विभाषा श्यावारोकाभ्याम् ॥ अ० ५। ४। १४४

श्याव और अरोक शब्द से परे बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को विकल्प करके दतृ आदेश हो। श्यावा दन्ता अस्य = श्यावदन् श्यावदन्तः। अरोकदन्। अरोकदन्तः। अरोक नाम दीप्तिरहितः [रुच दीप्तावित्येतस्येतस्मात्]।

२५८–अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च ॥ अ० ५ । ४ । १४५ ॥

अग्रान्त शब्द, शुद्ध, शुभ्र, वृष और वराह इनसे परे बहुव्रीहि समासान्त दन्त शब्द को विकल्प करके दतृ आदेश हो। जैसे— कुड्मलाग्रमिव दन्ता अस्य=कुड्मलाग्रदन् । कुड्मलाग्रदन्तः । शुद्धदन् । शुद्धदन्तः । शुभ्रदन् । शुभ्रदन्तः । वृषदन् । वृषदन्तः । वराहदन् । वराहदन्तः ।[1]

२५९–ककुदस्यावस्थायां लोपः ॥ अ० ५ । ४ । १४६ ॥

अवस्था अर्थ में वर्त्तमान बहुव्रीहि समासान्त ककुद शब्द के अन्त का लोप हो। [असञ्जातं ककुदमस्य=] असंजातककुत् वत्सः । बाल इत्यर्थः । [पूर्णककुत् । मध्यमवया इत्यर्थः] । उन्नतककुत् । वृद्धवया वृष इत्यर्थः । स्थूलककुत् । बलवानित्यर्थः । [यष्टिककुत् । नातिस्थूलो नातिकृश इत्यर्थः] अवस्थायामिति किम् ? श्वेतककुदः ।

२६०–त्रिककुत् पर्वते ॥ अ० ५ । ४ । १४७ ॥

पर्वत अर्थ में त्रिककुत् निपातन किया है। त्रीणि ककुदान्यस्य =त्रिककुत् पर्वतः] यह पर्वत विशेष की संज्ञा है] । पर्वत इति किम् ? त्रिककुदोऽन्यः ।

२६१–उद्विभ्यां काकुदस्य ॥ अ० ५ । ४ । १४८ ॥

उत् और विपूर्वक बहुव्रीहि समासान्त जो काकुद शब्द उसके अन्त का लोप हो। उद्गतं काकुदमस्य=उत्काकुत् । विकाकुत् । तालु काकुदमुच्यते ।

---

१. [अनुक्तसमुच्चयार्थश्चकारः । अहिदन् । अहिदन्तः । इत्याद्यन्येऽपि शब्दाः काशिकायां द्रष्टव्याः] ।

२६२–पूर्णाद्विभाषा ॥ अ० ५ । ४ । १४९ ॥

पूर्ण शब्द से परे बहुव्रीहि समासान्त जो काकुद उसके अन्त का लोप विकल्प करके हो । पूर्णकाकुत् । पूर्णकाकुदः ।

२६३–सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ॥ अ० ५ । ४ । १५० ॥

सुहृद् और दुर्हृद् निपातन [क्रमशः] मित्र और अमित्र अर्थों में किये हैं । शोभनं हृदयमस्य=सुहृन्मित्रम् । दुष्टं हृदयमस्य=दुर्हृदमित्रः । मित्रामित्रयोरिति किम् ? सुहृदयः कारुणिकः । दुर्हृदयश्चोरः ।

२६४–उरःप्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ५ । ४ । १५१ ॥

उरस् आदि शब्द [गणपाठ सूत्र १५६] जिसके अन्त में हों उस बहुव्रीहि समास से समासान्त कप् प्रत्यय हो । जैसे—व्यूढमुरोऽस्य =व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः । अवमुक्तोपानत्कः ।

२६५–इनः स्त्रियाम् ॥ अ० ५ । ४ । १५२ ॥

इन् प्रत्ययान्त बहुव्रीहि समास से [स्त्रीलिङ्ग में] समासान्त कप् प्रत्यय हो । बहवो दण्डिनोऽयां शालायां=बहुदण्डिका शाला । बहुच्छात्रिका । बहुस्वामिका नगरी । बहुवाग्मिका सभा । स्त्रियामिति किम् ? बहुदण्डी[1] । बहुदण्डिको वा राजा ।

२६६–नद्यृतश्च ॥ अ० ५ । ४ । १५३ ॥

नद्यन्त और ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय हो । जैसे—बह्व्यः कुमार्योऽस्यां शालायां सा=बहुकुमारीका शाला ।

---

१. यहाँ शेषाद्विभाषा [अ० ५ । ४ । १५४ ॥] इस सूत्र से शेष अविहित समासान्त शब्दों से विकल्प करके कप् प्रत्यय हो जाता है ।

बहुब्रह्मबन्धूको देशः । [ऋतः] बहवः कर्त्तारोऽस्य=बहुकर्तृको यज्ञः ।

२६७–न संज्ञायाम् ।। अ० ५ । ४ । १५५ ।।

बहुव्रीहि समास से संज्ञा विषय में समासान्त कप् प्रत्यय न हो । विश्वं यशोऽस्य=स विश्वयशाः ।

२६८–ईयसश्च ।। अ० ५ । ४ । १५६ ।।

ईयसन्त बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय न हो । बहवः श्रेयांसोऽस्य=बहुश्रेयान् । बह्व्यः श्रेयस्योऽस्य=बहुश्रेयसी । ह्रस्वत्वमपि न भवति । ईयसो बहुव्रीहौ पुंवदिति वचनात्[1] ।

२६९–वन्दिते भ्रातुः ।। अ० ५ । ४ । १५७ ।।

प्रशंसा अर्थ में[2] भ्रातृशब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो । शोभनो भ्राताऽस्य=सुभ्राता । वन्दित इति किम् ? मूर्खभ्रातृकः । दुष्टभ्रातृकः ।

२७०–ऋतश्छन्दसि ।। अ० ५ । ४ । १५८ ।।

वैदिक प्रयोग विषय में ऋकारान्त बहुव्रीहि समास से कप् प्रत्यय न हो । पण्डिता माताऽस्य=स पण्डितमाता । विद्वान्पिताऽस्य=

---

१. [वार्त्तिकमिदम् । महा० अ० १ पा० २ आ० २ ।। "यथा पुंवद्भावे सतीकारस्य ह्रस्वो न भवति, एवं ईयसः परस्य स्त्री प्रत्ययस्यापि न भवति" इति वार्त्तिकार्थः ।। अभिप्राय यह है कि 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य अ० १ । २ । ४८ ।।' से ह्रस्व प्राप्त था किन्तु "ईयसो बहु०" इस वार्त्तिक से न हुआ] ।

१. [वदि अभिवादनस्तुत्योः=नमस्कार और प्रशंसा । इस प्रकार वदि नमस्कार अर्थ में भी है किन्तु यहाँ स्तुत्यर्थक का ही ग्रहण है ।]

स विद्वत्पिता । विदुषी स्वसाऽस्य = स विद्वत्स्वसा । सुहोता ।

२७१—नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे ॥ अ० ५ । ४ । १५९ ॥

स्वाङ्गवाची नाडी और तन्त्री शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो । बह्व्यः नाड्योऽस्य = बहुनाडिः कायः । बहुतन्त्रीर्ग्रीवा[1] [धमनीवचनस्तन्त्रीशब्दः] । स्वाङ्ग इति किम् ? बहुनाडीकः स्तम्भ । बहुतन्त्रीका वीणा ।

२७२—निष्प्रवाणिश्च ॥ अ० ५ । ४ । १६० ॥

प्रवाणी [तन्तुवायशलाका] नाम कोरी की शलाई का है । निर्गता प्रवाणी यस्मात्स निष्प्रवाणिः पटः । निष्प्रवाणिः कम्बलः [अपनीतशलाकः] । प्रत्यग्र [नवीन] इत्यर्थः ।

२७३—सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ॥ अ० २ । २ । ३५

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण पद का पूर्वनिपात हो । सप्तमी । जैसे—कण्ठेकालः । उरसिलोमा । विशेषण । चित्रगुः । शबलगुः ।

---

१. यहां "तन्त्री" शब्द को ह्रस्व न हुआ क्योंकि स्त्री अधिकार में जो प्रत्यय होते हैं उन्हीं को ह्रस्व होता है । महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने अष्टाध्यायी भाष्य भाग १ पृष्ठ १३९ पर इसे स्पष्ट किया है, वे लिखते हैं:—"गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य" अ० १ । २ । ४८ ॥ अस्मिन् सूत्रे स्त्रीशब्द स्वरितस्य लिङ्गमस्ति । "स्त्रियाम्" [अ० ४ । १ । ३ ॥] इत्यधिकारे स्त्रीशब्दः स्वरितोऽस्ति । तेन स्त्र्यधिकारे ये प्रत्ययाः, तेषामेव ह्रस्वो भवति । इह न भवति— अतितन्त्रीः । अतिलक्ष्मीः । अतिश्रीः । अत्रौणदिक ई—प्रत्ययः] ।" यही बात आगे सामासिक सूत्र ६३६ में भी स्पष्ट है ॥ सं० ॥

२७४--वा०—[बहुव्रीहौ] सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम्[1] ॥

[ब० स० में] सर्वनाम और संख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात हो। सर्वश्वेतः। सर्वकृष्णः द्विशुक्लः। द्विकृष्णः। विश्वदेवः[2]। विश्वयशाः। द्विपुत्रः। द्विभार्यः। अथ यत्र संख्यासर्वनाम्नोरेव बहुव्रीहिः कस्य तत्र पूर्वनिपातेन भवितव्यम्। परत्वात् संख्यायाः। द्व्यन्यः। त्र्यन्यः

२७५--वा०—वा प्रियस्य पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

प्रिय शब्द का विकल्प करके पूर्व निपात हो[3] प्रियधर्मः। धर्मप्रियः। [प्रियगुडः। गुडप्रियः]।

२८६--वा०—सप्तम्याः पूर्वनिपाते गड्वादिभ्यः परवचनम् ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त शब्दों का पूर्वनिपात (सप्तमी विशे० [अ० २। २। ३५॥] सा० २७३] इस सूत्र से कर चुके हैं सो गडु आदि शब्दों में न हो अर्थात् परनिपात हो। जैसे—[कण्ठे गडुः=] गडुकण्ठः। गडुशिराः [क्वचिन्न-वहेगडुः]।

२७७--निष्ठा ॥ अ० २। २। ३६॥

निष्ठान्त शब्द [पद] का प्रयोग बहुव्रीहि समास में पूर्व

---

१. [यहाँ सर्वनाम और संख्याची शब्दों के विशेष्य होने से सा० सूत्र २७३ से इन्हें पूर्वनिपात प्राप्त न था इसलिये यह वार्त्तिक है]।

२. ['विश्वं देवो यस्य' इति विग्रहः। महा० २। २। २॥ में इस वार्त्तिक पर कैयट और नागेश का विवेचन द्रष्टव्य है]।

३. [प्रिय शब्द के विशेषणवाची होने से सूत्र से नित्य पूर्वप्रयोग प्राप्त था उसका इससे विकल्प किया]।

हो । अधीता विद्या येन = अधीतविद्याः । प्रक्षालितहस्तपादः । कृतकटः । कृतधर्मः । कृतार्थः । संशितव्रतः ।

२७८--वा०---निष्ठायाः पूर्वनिपाते जातिकालसुखादिभ्यः परवचनम् ।।

जहाँ निष्ठान्त शब्दों [पदों] का पूर्वनिपात किया है वहाँ जातिवाची, कालवाची और सुखादि शब्दों का पूर्वनिपात न हो अर्थात् परप्रयोग किया जावे । जैसे—[जाति -] शार्ङ्गजग्धी [1] । पलाण्डुभक्षिती । [काल—] मासजातः । संवत्सरजातः । [सुखादि—] सुखजातः । दुःखजातः ।

२७९--आ०--प्रहरणार्थेभ्यश्च परे निष्ठासप्तम्यौ भवत इति वक्तव्यम् ।।

शस्त्रवाची शब्दों से परे निष्ठान्त और सप्तम्यन्त शब्द होने चाहिये [निष्ठान्त—] असिरुद्यतो येन = अस्युद्यतः । मुसलोद्यतः । [सप्तम्यन्त-पाणौ दण्डोऽस्य =] दण्डपाणिः ।

२८०--वाऽऽहिताग्न्यादिषु ।। अ० २ । २ । ३७ ।।

बहुव्रीहि समास में आहिताग्नि इत्यादि शब्दों [गणपाठ सूत्र १७] से निष्ठान्त का पूर्वनिपात विकल्प करके हो । अग्निराहितो येन = अग्न्याहितः । आहिताग्निः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । दन्तजातः । इत्यादि ।।

---

१. [प्रायः "सारङ्गजग्धी" ऐसा पाठ मिलता है । "सारङ्गो जग्धो यया सा इति । "सारङ्ग (शार्ङ्ग) 'पलाण्डु' जातिवाचक शब्दों से "जग्धी" "भक्षिती", निष्ठान्त का प्रयोग हुआ है] ।

अब इसके आगे द्वन्द्वसमास का प्रकरण है—

उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः[1] ।।

२८१--चार्थे द्वन्द्वः ।। अ० २ । २ । २९ ।।

जो चकार के अर्थ में वर्त्तमान अनेक [अनेक की अनुवृत्ति आई है] सुबन्त के साथ समास पावें सो द्वन्द्वसंज्ञक समास हो। चकार के चार अर्थ हैं—समुच्चय । अन्वाचय । इतरेतर और समाहार । सो समुच्चय और अन्वाचय इन अर्थों में असमर्थ [अर्थात् अन्यपद के अध्याहार की अपेक्षा] होने से समास नहीं हो सकता और इतरेतर तथा समाहार अर्थों में द्वन्द्व समास हो, प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च तौ=प्लक्षन्यग्रोधौ । धवश्च खदिरश्च पलाशश्च ते=धवखदिर-पलाशाः ।

२८२--द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ।। अ० ५ । ४ । १०६ ।।

जो द्वन्द्व समाहार अर्थ में वर्त्तमान हो तो चवर्गान्त, दान्त, पान्त और हान्त द्वन्द्व समास से समासान्त टच् प्रत्यय हो । जैसे—वाक् च त्वक् च सनयोः समाहारः=वाक्त्वचम् । स्रक्च त्वक् च= स्रक्त्वचम् । श्रीश्च स्रक् च=श्रीस्रजम् । इडूर्जम् । वागूर्जम् । समिधश्च दृषदश्च=समिद्दृषदम् । संपद्विपदम् । वाग्विप्रुषम् । छत्रोपानहम् । धेनुगोदुहम् । द्वन्द्वादिति किम् ? तत्पुरुषान् माभूत् । पञ्चवाचः समाहृताः=पञ्चवाक् । चुदषहान्तादिति किम् ? वाक्-समित् [समाहार इति किम् ? प्रावृट्शरदौ] ।

---

१. द्वन्द्व समास में पूर्व-पर सब शब्दों के अर्थ प्रधान रहते हैं ।

२८३—उपसर्जनं पूर्वम् ॥ अ० २ । २ । ३० ॥

सब समासों में उपसर्जनसंज्ञक का पूर्वप्रयोग करना चाहिये । कष्टं श्रितः = कष्टश्रितः । शङ्कुलाखण्डः, इत्यादि ।

२८४—राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० २ । २ । ३१ ॥

सब समासों में राजदन्त आदि शब्दों [गणपाठ सूत्र १६] का परे प्रयोग होता है । दन्तानां राजा = राजदन्तः । [**वनस्य अग्रे**] अग्रेवणम् । [निपातनादलुक्] । [पूर्वं वासितं पश्चाल्लिप्तं =] लिप्तवासितम् ।

२८५—द्वन्द्वे घि ॥ अ० २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्व समास में घिसंज्ञक शब्द [ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द] का पूर्वनिपात होता है पटुश्च गुप्तश्च = पटुगुप्तौ । ['द्वन्द्वे' इति किम् ? पूर्ववायुः । यहाँ षष्ठी त० समास में घि-संज्ञक वायु शब्द का पूर्वनिपात न हुआ] ।

२८६—वा०—अनेकप्राप्तावेकस्य नियमः शेषेत्वनियमः ॥

जहाँ अनेक घिसंज्ञकों का पूर्वनिपात प्राप्त हो वहाँ एक घिसंज्ञक पूर्व प्रयोक्तव्य है और जो शेष रहें उनमें कुछ नियम नहीं है । पडुमृदुशुक्लाः । पटुशुक्लमृदवः ।

२८७—वा०—ऋतुनक्षत्राणामानुपूर्व्येण समानाक्षराणां पूर्वनिपातो वक्तव्यः ॥

[बराबर अक्षर वाले] ऋतु और नक्षत्र जिस क्रम से पढ़े लिखे और समझे जाते हैं उनका उसी क्रम से पूर्व निपात होना चाहिये । [ऋतुवाची] जैसे—शिशिरवसन्तावुदगयनस्थौ । [नक्षत्रवाची—] कृत्तिकारोहिण्यः । चित्रास्वाती । [समानाक्षर ग्रहण इसलिये है कि

"ग्रीष्मवसन्तौ" यहाँ वसन्त और 'पुष्यपुनर्वसू' यहाँ पुनर्वसु शब्द का पूर्व निपात न हो।

२८८--वा०--अभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्[1] ॥

जहाँ पूर्वापर नियमपठित शब्द हों उन और जहाँ साध्य और साधनवाची शब्दों का समास किया जाय वहां पूर्वापर नियमित शब्द और साधन [?] वाची शब्दों का पूर्व निपात होता है। ऋग्यजुःसामाथर्वाणो वेदाः । इत्यादि । माता च पिता च मातापितरौ । श्रद्धा च मेधा च श्रद्धामेधे । दीक्षा च तपश्च दीक्षातपसी ।

२८९--वा०--लघ्वक्षरं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥

जिस पद में थोड़ी मात्रा हों उस पद का द्वन्द्वसमास में पूर्व निपात होता है। कुशाश्च काशाश्च=कुशकाशम् । शरचापम् । शरशादम् ॥ अपर आह—

२९०--वा०--सर्वत एवाभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम् ॥ लघ्वक्षरादपीति ।

किन्हीं आचार्यों का ऐसा मत है कि सब विधियों का अपवाद होके अभ्यर्हित [सबसे श्रेष्ठ] का ही पूर्वनिपात होना चाहिये। जैसे—दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी[2] ।

२९१-वा०--वर्णानामानुपूर्व्येण पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम् ॥

---

१. "अभ्यर्हितं च" । सब प्रकार जो पूजनीय है, उस पद का द्वन्द्व समास में पूर्वप्रयोग हो। मातापितरौ । [श्वश्रूश्वसुरौ । श्रद्धामेधे ।] पिता की अपेक्षा माता अत्यन्त सेवा करने योग्य है इससे उसका पूर्व प्रयोग होता है। अ० भा० भाग १ पृ० २६४ ॥

२. तपसः फले दीक्षाश्रद्धे, तस्माच्छ्रेष्ठे । अ० भा० भाग १ पृ० २६३ ॥

ब्राह्मण आदि वर्णों का यथाक्रम पूर्वनिपात जानना चाहिये। ब्राह्मक्षत्रियविट्शूद्राः।

२९२--वा०--भ्रातुश्च ज्यायसः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम्॥

द्वन्द्व समास में बड़े भाई का पूर्वनिपात होता है। युधिष्ठिरार्जुनौ। रामलक्ष्मणौ।

२९३--वा०--संख्याया अल्पीयस्याः पूर्वनिपातो भवतीति वक्तव्यम्॥

द्वन्द्वसमास में अल्पसंख्यावाची शब्दों का पूर्वनिपात होता है। एकादशद्वादश [म्]। द्वित्राः। त्रिचतुराः। नवतिशतम्।

२९४--वा०--धर्मादिषूभयं पूर्वं निपततीति वक्तव्यम्॥

धर्म आदि शब्दों में दोनों पदों का पूर्वनिपात होता है। धर्मार्थौ। अर्थधर्मौ। कामार्थौ। अर्थकामौ। गुणवृद्धी। वृद्धिगुणौ। आद्यन्तौ। अन्तादी।

२९५--अजाद्यदन्तम्॥ अ० २। २। ३३॥

जिसके आदि में अच् और अकार अन्त में हो उस पद का पूर्व निपात होता है। उष्ट्रखरौ। ईशकेशवौ। इन्द्ररामौ। द्वन्द्वे अजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन[१]। जहाँ अजादि अदन्त और घिसंज्ञक का द्वन्द्व समास हो वहाँ अजादि अदन्त का पूर्वनिपात होता है। जैसे—इन्द्राग्नी इन्द्रवायू। तपरकरणं किम्? अश्वावृषौवृषाश्वे।

२९६--अल्पाच्तरम्[२]॥ अ० २। २। ३४॥

---

१. काशिका व कौमुदी में यह वार्त्तिकवत् पठित है॥ सं॥

२. [सामासिक के गत संस्करणों में "अल्पाच्तरम्" यह सूत्र ही नहीं है। जो कि द्वन्द्व समास प्रकरण में होना चाहिये था। इतना ही

थोड़े अच् वाला जो पद है उसका पूर्व प्रयोग करना चाहिये [जैसे—प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च = प्लक्षन्यग्रोधौ]।

२९७--द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य्यसेनाङ्गानाम् ॥ अ० २।४।२॥

प्राणि तूर्य[1] और सेना के अङ्गों का जो द्वन्द्वसमास सो एकवचन हो [द्विगुरेकवचनम् अ० २।४।१॥ इससे एक वचन की अनुवृत्ति आ रही है]। (प्राण्यङ्ग) पाणी च पादौ च = पाणिपादम्। शिरोग्रीवम्। (तूर्याङ्ग)—मार्दङ्गिकपाणिविकम्। वीणावादकपरिवादकम्। (सेनाङ्ग)—रथिकाश्वारोहम्। रथिक-पादातम्।

२९८--अनुवादे चरणानाम् ॥ अ० २।४।३॥

अनुवाद[2] अर्थ में चरणवाची सुबन्तों का जो द्वन्द्व समास सो एकवचन होता है।

२९९--स्थेणोरद्यतन्यां चेति वक्तव्यम् ॥

जहाँ स्था और इण धातु का लुङ् ["अद्यतनी लुङ् की संज्ञा है] लकार का प्रयोग हो वहाँ चरणवाची सुबन्तों का द्वन्द्व

नहीं अपि तु इस सूत्र के वार्तिक भी "द्वन्द्वे घि" सा० २८५ सूत्र पर पढ़ दिये गये हैं यह विपर्यास भी चिन्त्य है। निस्सन्देह व्याकरणसूर्य महर्षि के इन तथाकथित ग्रन्थ में पदे-पदे ऐसे स्खलनस्थल इस ग्रन्थ से उनका कितना नगण्य सम्बन्ध रहा होगा यही व्यक्त करते हैं। सम्प्रति इस सूत्र का समावेश हमने कोष्ठकों में यहाँ कर दिया है, पर वार्तिक यथापूर्व ही रहने दिये हैं]॥ सं०॥

१. ढोल आदि बाजों का यह नाम है।

२. अनुवाद उसे कहते हैं जो पूर्व कहे प्रसङ्ग को किसी प्रयोजन के लिये फिर कहना है।

एकवचन होता है। उदगात् कठकालापम् । प्रत्यष्ठात् कटकौथुमम्
अनुवाद इति किम् ? उदगुः कठकालापाः । प्रत्यष्ठुः कठकौथुमाः
स्थेणोरिति किम् ? अनन्दिषुः कठकालापाः । अद्यतन्यासिति किम् ?
उद्यन्ति कठकालापाः । इस सूत्र में चरण शब्द उन लोगों का नाम
है कि जो वेद की शाखाओं के निमित्त अर्थात् जिनके नाम से इस
समय भी शाखा प्रसिद्ध हैं। जैसे—कठ । मुण्डक । चरक । सुश्रुत ।
इत्यादि ।

३००--अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम् ।। अ० २ । ४ । ४ ।।

जो ऋतुवाची शब्द नपुंसक न हो तो अध्वर्यु नाम यजुर्वेद में
विधान किये ऋतु नाम यज्ञवाची सुबन्तों का द्वन्द्वसमास एकवचन
हो । जैसे—[अर्कश्च अश्वमेधश्च =] अर्काश्वमेधम् । [सायाह्नश्चाति-
रात्रश्चेति =]सायाह्नातिरात्रम् । अध्वर्युक्रतुरिति किम् ? इषुवज्रौ[1] ।
उद्भिद्बलिभिदौ । अनपुंसकमिति किम् ? राजसूयवाजपेये[2] । इह
कस्मान्न भवति दर्शपौर्णमासौ । क्रतुशब्दः सोमयज्ञेषु रूढः[3] ।

३३१--अध्ययनतोऽविप्रकृष्टाख्यानाम् ।। अ० २ । ४ । ५ ।।

जिन ग्रन्थों का पठनपाठन अतिसमीप होता हो उन सुबन्तों
का द्वन्द्वसमास एकवचन हो । पदकक्रमकम् । क्रमकवार्तिकम् ।

---

१. "इषुवज्रप्रभृतयोऽध्वर्युक्रतवो न सम्भवन्ति । नहि तेषामध्वर्युवेदे विधानम्।
किन्तर्हि ? सामवेदे ।।" न्यासः ।।

२. "एतौ राजसूयवाजपेयशब्दौ पुँल्लिङ्गावपि स्तः । तत्र यदा नपुंसकलिङ्गौ
प्रयुज्येते तत्रेदं प्रत्युदाहरणम् ।।" न्यासः ।।

३. "यत्र यत्र सोमपानं विहितं ते सोमयागाः । तेष्वेव क्रतुशब्दो रूढः । न च
दर्शपौर्णमासौ सोमयागौ ।।" न्यासः ।।

अष्टाऽध्यायीमहाभाष्यम् । अध्ययनत इति किम् ? पितापुत्रौ । अविप्रकृष्टाख्यानामिति किम् ? याज्ञिकवैयाकरणौ ।

३०२-जातिरप्राणिनाम् ।। अ० २ । ४ । ६ ।।

प्राणिवर्जित जातिवाची सुबन्तों का द्वन्द्वसमास एकवचन हो । आराशस्त्रि । धानाशष्कुलि । शय्यासनम् । जातिरिति किम् ? नन्दकपाञ्चजन्यौ । अप्राणिनामिति किम् ? ब्रह्म—[ब्राह्मण] क्षत्रियविट्शूद्राः ।

३०३-विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।। अ० २ । ४ । ७ ।।

भिन्न लिङ्ग नदी और भिन्न लिङ्ग देशवाची [देशावयववाची] सुबन्तों का द्वन्द्वसमास एकवचन हो ग्राम को छोड़ के । [नदी =] उद्धयश्च इरावती च = उद्धयेरावति । गङ्गा च शोणश्च = गङ्गा-शोणम् । देश । कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च = कुरुकुरुक्षेत्रम् । कुरुजाङ्गलम् । विशिष्टलिङ्ग इति किम् ? गङ्गायमुने । मद्रकेकयाः ।

३०४-वा०—अग्रामा इत्यत्र नगराणां प्रतिषेधो वक्तव्यः[1] ।।

---

१. [ग्राम में जिस कार्य का निषेध है वह कार्य नगर में भी नहीं किया जाता । जैसे—"अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः" अथवा "अभक्ष्यो ग्राम्यशूकरः" अर्थात् ग्राम्य मुर्गा अथवा ग्राम्य सुअर अभक्ष्य है, इस कथन से नगर मुर्गा अथवा नगर सुअर भी भक्ष्य नहीं अपितु अभक्ष्य ही माने जाते हैं । इससे यह ज्ञापित होता है कि ग्राम शब्द से नगर का भी ग्रहण होता है । अतः उक्त सूत्र में "अग्रामाः" इस पाठ से नगर का भी जो प्रतिषेध प्राप्त था उस प्रतिषेध के प्रतिषेधार्थ यह वार्त्तिक है । अर्थात् नगरवाची शब्दों के द्वन्द्व में एकवद्भाव हो ।। "ग्रामप्रतिषेधे नगरप्रतिषेधः" ।। महाभाष्य में वार्त्तिक इस प्रकार है] ।। सं० ।।

जैसे ग्रामों के द्वन्द्व को एकवचन का निषेध है वैसे नगरों का न होना चाहिये । जैसे—मथुरापाटलिपुत्रम् ।

३०५—वा०—उभयतश्च ग्रामाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

उभयतः अर्थात् ग्राम और नगरों का अवयव जो द्वन्द्वसमास उसको एकवचन न हो । शौर्य्यं नाम नगरम्, केतवता नाम ग्रामः । शौर्यं च केतवता च=शौर्यकेतवते । जाम्ववं नगरम्, शालूकिनी ग्रामः । [जाम्बवं च शालूकिनी च=] जाम्बवशालूकिन्यौ ।

३०६—क्षुद्रजन्तवः[1] ॥ अ० २ । ४ । ८ ॥

[सूक्ष्मात् सूक्ष्मान् जीवानारभ्य] नकुलपर्य्यन्ताः क्षुद्रजन्तवः । क्षुद्रजन्तुवाची सुबन्तों का जो द्वन्द्वसमास सो एकवचन हो, [दंशाश्च मशकाश्च=] दंशमशकम् । यूकामक्षिकमत्कुणम् । क्षुद्रजन्तव इति किम् ? ब्राह्मणक्षत्रियौ ।

३०७—येषां च विरोधः शाश्वतिकः ॥ अ० २ । ४ । ९ ॥

जिनका वैर नित्य हो तद्वाची सुबन्तों का द्वन्द्व एकवचन हो । [मार्जारश्च मूषकश्च=] मार्जारमूषकम् । अश्वमहिषम् । अहिनकुलम् । श्वशृगालम् । चकार ग्रहण का प्रयोजन यह है कि जब विभाषा वृक्षमृग० [सा० ३११] यह सूत्र प्राप्त हो और येषां च विरोधः० यह भी, तब नित्य ही एकवचन हो । अश्वमहिषम् । काकोलूकम् । शाश्वतिक इति किम् ? [कुरुपाण्डवा युयुधिरे] । देवासुराः ।

३०८—शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ अ० २ । ४ । १० ॥

---

१. "क्षुद्रजन्तुरनस्थिः स्यादथ वा क्षुद्र एव यः ।
शतं वा प्रसृतौ येषां केचिदानकुलादपि ॥"
आनकुलादपीतीयमेव स्मृतिः प्रमाणमितरासां तद्विरोधादिति जयादित्यः ॥ सं० ॥

जिन शूद्रों के [आर्यसेवकों के] भोजन करे पीछे मांजे से भी शुद्ध न हों वे निरवसित कहाते हैं । [और जिनके पात्र संस्कार करने अर्थात् मांजने से शुद्ध हो सकते हैं वे अनिरवसित कहाते हैं]। अनिरवसित शूद्रों का द्वन्द्वसमास एकवचन हो। तक्षायस्कारम्। रजकतन्तुवायम् । अनिरवसितानामिति किम् ?[1] [चण्डालाश्च मृतपाश्च =] चण्डालमृतपाः ।

३०९—गवाश्वप्रभृतीनि च ।। अ० २ । ४ । ११ ।।

यहाँ गवाश्वम् इत्यादि शब्द [गणपाठ सूत्र २०] द्वन्द्वसमास में एकवचन निपात किये हैं। गवाश्वम् । गवाविकम्। गवैडकम्। अजाविकम्। अजैडकम्।

३१०—वा०—गवाश्वप्रभृतिषु यथोच्चारितं द्वन्द्ववृत्तं द्रष्टव्यम् ।।

[यह निपातन कार्य गवाश्वप्रभृतिगण में जैसे शब्द पाणिनि जी ने पढ़े हैं, केवल उन्हीं में होता है]।

रूपान्तरे तु नायं विधिर्भवतीति[2] । [गोऽश्वम्], गोऽश्वौ । पशुद्वन्द्वविभाषैव भवति ।

३११—विभाषा[3] वृक्षमृगतृणधान्यव्यञ्जनपशुशकुन्यश्ववडवपूर्वापराधरोत्तराणाम् ।। अ० २ । ४ । १२ ।।

---

१. [मृतपाः को भाषा में 'डोम' कहते हैं ये भी चण्डाल सदृश ही होते हैं। ये श्मशान वा श्मशान के निकट रहते और मृतक के वस्त्र और चिताकाष्ठ का संग्रह कर जीविका चलाते हैं]।

२. रूपान्तर अर्थात् जिस पक्ष में अवङ् आदेश नहीं होता, वहाँ यह एकवचन विधि नहीं होती। [किन्तु आगे के सूत्र से 'गोऽश्वं, गोऽश्वाः' ये दो प्रयोग बनेंगे]।

३. इस सूत्र में प्राप्त, अप्राप्त उभय विभाषा है। जैसे वृक्ष तृण धान्य और व्यञ्जन शब्दों में प्राप्त विभाषा है, क्योंकि अप्राणि जातिवाची के होने

वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्ववडव, पूर्वापर, अधरोत्तर, इन सुबन्तों का द्वन्द्वसमास परस्पर विकल्प करके एकवचन हो। (वृक्ष) प्लक्षन्यग्रोधम्। प्लक्षन्यग्रोधाः। (मृग) रुरुपृषतम् रुरुपृषताः। (तृण) कुशकाशम्। कुशकाशाः। (धान्य) व्रीहियवम्। व्रीहियवाः। (व्यञ्जन) दधिघृतम्। दधिघृते। (पशु) गोमहिषम्। गोमहिषाः (शकुनि) तित्तिरिकपिञ्जलम्। तित्तिरिकपिञ्जलाः। हंसचक्रवाकम्। हंसचक्रवाकाः। [अश्ववडव] अश्ववडवम्। अश्ववडवौ। [पूर्वापर। पूर्वापरम्। पूर्वापरे। [अधरोत्तर] अधरोत्तरम्। अधरोत्तरे।

३१२–वा०–बहुप्रकृतिः फलसेनावनस्पतिमृगशकुनिक्षुद्रजन्तुधान्यतृणानाम् ॥

[फलवाची, सेना के अवयव, वनस्पति अर्थात् वृक्षवाची, मृग शकुनि पक्षी], क्षुद्रजन्तु, धान्य और तृणवाची शब्दों के बहुवचन से द्वन्द्वसमास होके वि० से एकवद्भाव हो, और पक्ष में बहुवचन ही बना रहे]।

एषां बहुप्रकृतिरेव द्वन्द्व एकवद्भवति[1]। न द्विप्रकृतिः। बदरामलके। रथिकाश्वारोहौ। प्लक्षन्यग्रोधौ। रुरुपृषतौ। हंसचक्रवाकौ। यूकालिक्षे। व्रीहियवौ। कुशकाशौ।

से पूर्व सूत्र [सा० ३०२] से एकवद्भाव नित्य प्राप्त है इससे विकल्प हो गया। मृग और पशु आदि सब शब्दों में अप्राप्त विभाषा अर्थात् किसी सूत्र से एकवद्भाव प्राप्त नहीं था इससे विकल्प होकर एकवचन प्राप्त हो गया॥ महर्षिकृत अ० भाष्य के आधार से॥ सं०॥

१. बहुप्रकृति अर्थात् जहाँ बहुवचनान्त शब्दों का द्वन्द्व हो वहीं एकवचन हो। (बदरामलके) यहाँ द्विवचनान्त के होने से एकवचन न हुआ।

३१३–विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि ॥ अ० २ । ४ । १३ ॥

जो अद्रव्यवाची और परस्पर विरुद्धार्थ सुबन्तों का द्वन्द्व, वह एकवचन विकल्प करके हो। शीतोष्णम्। शीतोष्णे। सुखदुःखम्। सुखदुःखे। जीवितमरणम्। जीवितमरणे। विप्रतिषिद्धमिति किम्? कामक्रोधौ। अनधिकरणवाचिनामिति किम्? शीतोष्णे उदके [यहाँ द्रव्य [जल] के वाची होने से एकवद्भाव न हुआ]।

३१४–न दधिपय आदीनि ॥ अ० २ । ४ । १४ ॥

दधिपय आदि शब्दों [का] [गणपाठ सूत्र २१] द्वन्द्व एकवचन न हो दधि च पयश्च ते=दधिपयसी। सर्पिर्मधुनी। मधुसर्पिषी। ब्रह्मप्रजापती। शिववैश्रवणौ। इत्यादि।

३१५–अधिकरणैतावत्त्वे च[1] ॥ अ० २ । ४ । १५ ॥

अधिकरणवाची द्वन्द्व समास के एतावत्त्वनाम परिमाण अर्थ में एकवचन न हो। चतुस्त्रिंशद्दन्तोष्ठाः। दश मार्दङ्गिकपाणविकाः।

३१६–विभाषा समीपे ॥ अ० २ । ४ । १६ ॥

अधिकरण के एतावत्त्व के समीप अर्थ में [जो द्वन्द्व वह] एकवचन विकल्प करके हो। उपदश दन्तोष्ठम्। [यहाँ अधिकरणै-

---

१. 'न' की अनुवृत्ति आ रही है। अधिकरणे आधेयस्य एतावत्त्वं (इयत्ता=तोलनं=परिमाणं)=अधिकरणैतावत्त्वं, तस्मिन् अर्थात् अधिकरण में जहाँ आधेय का परिमाण करना हो वहाँ जो द्वन्द्वसमास है वह एकवत् न हो। जैसे—हस्तौ च पादौ च चत्वारो हस्तपादाः। घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि। यहाँ प्राणि अङ्ग होने से नित्य प्राप्त एकवद्भाव का निषेध किया है। [महर्षिकृत अष्टा० भाष्य]।

तावत्त्व दश संख्या है उसका समीपार्थ ९ वा ११] उपदशा दन्तोष्ठाः । उपदशं मार्दङ्गिकपाणविकम् । उपदशा मार्तङ्गिकपाणविकाः ।

३१७–स नपुंसकम् ।। अ० २ । ४ । १७ ।।

जिस द्विगु और द्वन्द्व को एकवद्भाव विधान किया है सो नपुंसक लिङ्ग होता है । (द्विगु) पञ्चगवम् । दशगवम् । (द्वन्द्व) पाणिपादम् । शिरोग्रीवम् । इत्यादि ।

परपद का लिङ्ग [परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः । अ० २ । ४ । २६ ।। सा० ३३८ सूत्र से] प्राप्त हुआ था उसका अपवाद यह सूत्र है ।

३१८–अव्ययीभावश्च ।। अ० २ । ४ । १८ ।।[1]

अव्ययीभाव समास नपुंसक लिङ्ग हो । [पूर्वपदार्थप्रधान अव्ययीभाव में किसी लिङ्ग का निश्चय नहीं होता इसलिये यह सूत्र है । उपगु । अतिरि । इत्यादि, इन शब्दों में नपुंसक लिङ्ग होने से ह्रस्व हो गया] ।

३१९–वा०–पुण्यसुदिनाभ्यामह्नः क्लीबतेष्यते ।।

जैसे—पुण्यं च तदहश्च पुण्याहम् । सुदिनाहम् ।

३२०–वा०–पथः संख्याव्ययादेः क्लीबतेष्यते ।।

संख्या और अव्यय जिसके आदि में हों ऐसे पथिन् शब्द को नपुंसकलिङ्ग हो । त्रिपथम् । चतुष्पथम् । विपथम् । सुपथम् ।

३२१–वा०–क्रियाविशेषणानां च क्लीबता वक्तव्या ।।

मृदु पचति । शोभनं पचति ।

---

१. [यह सूत्र और आगे के तीनों वार्त्तिक प्रथम संस्करण में जो संवत् १९३८ वि० में छपा, उपलब्ध नहीं हैं । पीछे से मिलाये गये हैं और जिसने मिलाये उसने काशिका का अनुसरण किया यह भी स्पष्ट होता है] ।

[एकशेष द्वन्द्व]

३२२–[1] सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ ॥ अ० १ । २ । ६४ ॥

जो तुल्य रूप शब्द हों उनका एक विभक्ति [अर्थात् समान-विभक्ति] परे हो तो एकशेष [अर्थात् एक तो रह जाय] तथा अन्य रूपों की निवृत्ति हो। वृक्षश्च वृक्षश्च=वृक्षौ। वृक्षश्च वृक्षश्च वृक्षश्च=वृक्षाः। इत्यादि बहुत उदाहरण होते हैं। सरूपाणामिति किम् ? प्लक्षन्यग्रोधाः। रूपग्रहणं किम् ? भिन्नेऽप्यर्थे यथा स्यात्। अक्षाः। पादाः। माषा इति[2]। एकग्रहणं किम् ? द्विबह्वोः शेषो माभूत्[3] [शेषग्रहण किम् ? एक आदेशो माभूत्][4]। एकविभक्ताविति किम् ? पयः पयो जरयति। [यहाँ एक पयः शब्द प्रथमान्त और दूसरा द्वितीयान्त है अतः समान विभक्ति न होने से एक शेष न हुआ] वासो वासश्छादयति। ब्राह्मणाभ्यां च कृतम्। ब्राह्मणाभ्यां च देहीति। [यहाँ भी प्रथम ब्राह्मण शब्द तृतीयान्त और दूसरा चतुर्थ्यन्त है]।

---

१. यहाँ से एकशेष द्वन्द्व का प्रकरण चलता है।

२. तथा ह्यक्षशब्द इन्द्रियाख्ये शकटाङ्गे विभीतकादावर्थे च वर्त्तते। पाद शब्दोऽपि कार्षापण श्लोकपाद पाणिपादादावर्थे वर्त्तते। माषशब्दोऽपि व्रीह्यादौ ॥ न्यासः ॥ अर्थात् भिन्न-भिन्न अर्थों वाले (बह्वर्थक) समान-रूप शब्दों में भी एकशेष हो जाय ॥ सं० ॥

३. अर्थात् दो वा बहुत शेष न रहें किन्तु एक ही शब्द बाकी रहे।

४. इस सूत्र पर महाभाष्य [जहाँ यह भी स्पष्ट किया गया है कि आदेश होने पर स्वर आदि दोष किस प्रकार उपस्थित हो जाते हैं] और महर्षि कृत अ० भाष्य भी विशेष रूप से द्रष्टव्य है ॥ सं० ॥

३२३—वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः[1] ॥ अ० १ । २ । ६५ ॥

जो तल्लक्षण अर्थात् वृद्धप्रत्ययान्त और युवप्रत्ययान्त ही का विशेष नाम विरूपता [विशेषो वैरूप्यम्] हो और मूल प्रकृति समास होवे तो वृद्धनाम गोत्रप्रत्ययान्त शब्द और युव प्रत्ययान्त शब्द का जब एक सङ्ग उच्चारण करें तब वृद्ध शेष रहे और युवा की निवृत्ति हो (उदाहरण) गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च तौ=गार्ग्यौ । वात्स्यश्च वात्स्यायनश्च=वात्स्यौ । वृद्ध इति किम् ? गर्गश्च गार्ग्यायणश्च=गर्गगार्ग्यायणौ । यूनेति किम् ? गार्ग्यश्च गर्गश्च= गार्ग्यगर्गौ । तल्लक्षण इति किम् ? गार्ग्यवात्स्यायनौ । [यहाँ शब्दाकृति भिन्न-भिन्न है इससे वृद्ध का एकशेष नहीं हुआ] एवकारः किमर्थः ? भागवित्तिश्च भागवित्तिकश्च=भागवित्तिभागवित्तिकौ । कुत्सा और सौवीर ये दो अर्थ भागवित्तिक शब्द में युवप्रत्ययान्त से भी अलग हैं ।[2]

---

१. [वृद्धः] वृद्ध अर्थात् गोत्रप्रत्ययान्त जो शब्द है, वह [यूना] युवप्रत्ययान्त शब्द के साथ [शेषः] शेष रहे और युवा प्रत्ययान्त शब्द की निवृत्ति हो जावे, परन्तु [तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः] जो गोत्रप्रत्ययान्त और युवा प्रत्ययान्त एक ही शब्द हो, उसमें प्रत्यय भेद ही हो, [प्रकृति अर्थात्] शब्द की आकृति भिन्न-भिन्न न हो, तो ॥

अष्टा० भाष्य भाग १ पृ० १५३ ॥

२. अर्थात् भागवित्तिक शब्द में कुत्सा और सौवीरत्व इन दो अर्थों के आधिक्य [अ० ४ । १ । १४७-४८] से युवत्वमात्रकृत विशेष अर्थात् वैरूप्य न रहा जो कि वृद्ध शेष के लिये अपेक्षित था । यह स्पष्ट करने के लिये 'एव' का प्रयोग है ॥ सं० ॥

३२४–स्त्री पुंवच्च ।। अ० १ । २ । ६६ ।।

[शेष और पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आ रही है] जब वृद्धा स्त्री और युवा का एक सङ्ग उच्चारण करें तब वृद्धा स्त्री शेष रहे और युवा की निवृत्ति हो । [और] पुंवत् अर्थात् स्त्री [उस शेष स्त्रीलिङ्ग शब्द] को पुँल्लिङ्ग के सदृश कार्य्य हो जो तल्लक्षण ही विशेष होवे तो । गार्गी च गार्ग्यायणश्च=गार्ग्यौ । वात्सी च वात्स्यायनश्च=वात्स्यौ । दाक्षी च दाक्षायणश्च=दाक्षी । [तल्लक्षण-श्चेदेवविशेषः इति किम् ? गार्गी च वात्स्यायनश्च=गार्गी-वात्स्यायनौ] ।

३२५–पुमान् स्त्रिया ।। अ० १ । २ । ६७ ।।

जो तल्लक्षण विशेष [अर्थात् दोनों शब्दों में लिङ्ग भेद ही हो, आकृति भेद न हो] होवे तो स्त्री के साथ पुरुष शेष रहे स्त्री निवृत्त हो । जैसे—ब्राह्मणश्च ब्राह्मणी च=ब्राह्मणौ । कुक्कुटश्च कुक्कुटी च=कुक्कुटौ । यहाँ तल्लक्षण विशेष इसलिये है कि कुक्कुटश्च मयूरी च=कुक्कुटमयूर्य्यौ । यहाँ एकशेष न होवे ।

एवकार इसलिये है कि इन्द्रश्च इन्द्राणी चेन्द्रेन्द्राण्यौ । यहाँ इन्द्राणी शब्द में पुंयोग की आख्या स्त्रीत्व से पृथक् होने के कारण एकशेष न हो ।[1]

३२६–भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् ।। अ० १ । २ । ६८ ।।

भ्रातृ और पुत्र शब्द, यथाक्रम स्वसृ और दुहितृ के साथ शेष रहें । भ्राता च स्वसा च=भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च=पुत्रौ ।

---

१. एवकारः किमर्थः । इन्द्रश्च इन्द्राणी चेन्द्रेन्द्राण्यौ । पुंयोगादाख्याया-मित्यपरो विशेषः । पुमानिति किम् ? प्राक् च प्राची च प्राक् प्राच्यौ । प्रागित्यव्ययलिङ्गम् ।। इति जयादित्यः ।।

३२७–नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चाऽस्याऽन्यतरस्याम् ॥

अ० १ । २ । ६९ ॥

नपुंसकलिङ्गवाची शब्द नपुंसकभिन्नवाची शब्द के साथ एकशेष पावे । और [उस शेष] नपुंसक को एकवचन विकल्प करके हो । शुक्लश्च कम्बलः शुक्ला च बृहतिका शुक्लं च वस्त्रं तदिदं शुक्लम् । तानीमानि शुक्लानि[1] । अनपुंसक के साथ इसलिये कहा है कि शुक्लं च शुक्लं च शुक्लं च = शुक्लानि । यहाँ एकवचन न हो ।

३२८–पिता मात्रा ॥ अ० १ । २ । ७० ॥

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द विकल्प करके शेष रहे । माता च पिता च = पितरौ । मातापितराविति वा ।

३२९–श्वशुरः श्वश्र्वा ॥ अ० १ । २ । ७१ ॥

---

१. आलस्यो मैथुनं निद्रा सेव्यमानं विवर्द्धते । 'अत्र सेव्यमानं' इति त्रिलिङ्गस्यैकशेषो नपुंसकं च । तत्रास्य नपुंसकस्यैकवद्भावः । 'अन्यतरस्याम्' इति वचनाद् द्वयमेतद् भवति । सेव्यमानं, सेव्यमानानि । तथा "कालोपसर्जने च तुल्यम्" । अत्र तुल्यशब्द उभाभ्यां सम्बध्यते । तुल्यः कालः, तुल्यमुपसर्जनम् । अत्रापि नपुंसकं शिष्यते, पुमान् निवर्त्तते । एकवद्भावो विकल्पेन भवति—कालोपसर्जने च तुल्यम्, कालोपसर्जने च तुल्ये ॥ अर्थात् आलस्य, मैथुन व निद्रा इनका स्वभाव ही है कि जितना इनका सेवन किया जाय उतना ही वे बढ़ते हैं । यहाँ आलस्य शब्द पुँल्लिङ्ग, निद्रा स्त्रीलिङ्ग और मैथुन नपुंसक लिङ्ग है । इन सब के साथ सम्बन्धित सेव्यमान शब्द में न० लिङ्ग ही होता है । और वि० से एकवचन अर्थात् पक्ष में द्वि और बहुवचन भी होता है । इत्यादि ॥

अ० भा० भाग १, पृ० १५५-१५६

श्वशुर शब्द श्वश्रू शब्द के साथ विकल्प करके शेष रहे। श्वश्रू च श्वशुरश्च = श्वशुरौ। श्वश्रूश्वशुराविति वा।

३३०–त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्॥ अ० १। २। ७२॥

यहाँ नित्य ग्रहण पूर्व विकल्प की निवृत्ति के लिये है। त्यद् आदि शब्द [गणपाठ सूत्र १] सब शब्दों के साथ शेष रहें। स च देवदत्तश्च = तौ। यश्च देवदत्तश्च = यौ। त्यदादीनां मिथो यद्यत् परं तच्छिष्यते। [त्यदादि शब्दों के परस्पर द्वन्द्वसमास में जो पर हो वह शेष रहे जैसे—] स च यश्च = यौ। यश्च कश्च = कौ। [तथा प्रथममध्यमोत्तमपुरुषेषु उत्तमस्यैकशेषो भवति। प्रथम, मध्यम और उत्तमपुरुषवाची शब्दों के द्वन्द्व में उत्तमवाची शब्द शेष रहता है जैसे—अहं च त्वं च स च = वयम्। यहाँ अस्मत् शब्द शेष रहा, औरों की निवृत्ति हो गई।

३३१–ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री॥ अ० १। २। ७३॥

ग्राम में रहने वाले [अतरुण] पशुओं के समुदाय में स्त्रीवाची शब्द पुरुषवाची शब्द के साथ शेष रहें। 'पुमान् स्त्रिया' [सा० ३२५] इस सूत्र से पुरुषवाची शब्द का शेष पाया था उसका अपवाद यह सूत्र है। महिषाश्च महिष्यश्च = महिष्य इमाश्चरन्ति। गाव इमाश्चरन्ति। अजा इमाश्चरन्ति। ग्राम्यग्रहणं किम्? रुरव इमे। पृषता इमे। [यहाँ वन्य पशु हैं इससे पुँल्लिङ्ग शब्द शेष रहा] पशुष्विति किम्? ब्राह्मणाः। क्षत्रियाः। संघेष्विति किम्? एतौ गावौ चरतः। अतरुणेष्विति किम्? वत्सा इमे। बर्करा इमे।

३३२–वा०–अनेकशफेष्विति वक्तव्यम्॥

अनेक शफ अर्थात् जिन पशुओं के खुर दो-दो हों कि जैसे—गाय भैंस आदि उन्हीं में यह विधि हो और यहाँ न होवे कि—अश्वा इमे। गर्दभा इमे। घोड़े और गधे के खुर जुड़े होते हैं। इसके आगे सामान्य सूत्रों को लिखते हैं जिनमें एक समास का नियम नहीं है।

३३३—प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्[1] ॥ अ० १।२।४३॥

समास विधायक सूत्रों में प्रथमा विभक्ति से जिस शब्द का उच्चारण किया हो वह उपसर्जनसंज्ञक हो। द्वितीया समास में द्वितीया प्रथमानिर्दिष्ट और तृतीया समास में तृतीया प्रथमानिर्दिष्ट है। ऐसे ही और भी जानो। [द्वितीया] कष्टश्रितः। [तृतीया] शङ्कुलाखण्डः।

३३४—उपसर्जनं पूर्वम् ॥[2] अ० २।२।३०॥

इस सूत्र से उपसर्जनसंज्ञक का पूर्व निपात होता है तथा अन्य भी उपसर्जन संज्ञा के बहुत प्रयोजन हैं सो अपने-अपने प्रकरण में समझने चाहियें यहाँ समास में उनके लिखने की आवश्यकता नहीं।

---

१. ['उपसर्जनम्' यह बड़ी संज्ञा की है अर्थात् जैसे—लोक में अप्रधान को उपसर्जन कहा जाता है वैसे ही यहाँ भी महती संज्ञा करने का प्रयोजन यह है कि अन्वर्थ अर्थात् सार्थक संज्ञा समझी जावे जैसे "अप्रधानमुपसर्जनमिति" अर्थात् अप्रधान को उपसर्जन कहते हैं और जिसके प्रति जो अप्रधान है वही उसके प्रति उपसर्जन है]।

समासे प्रथमानिर्दिष्टमप्रधानत्वसमानाधिकरणोपसर्जनपदाभिन्नमिति सूत्रार्थः॥ इति उद्योतः॥

२. [यह सूत्र पूर्व भी [सा० २८३] पढ़ा जा चुका है]।

३३५—एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ।। अ० १ । २ । ४४ ।।

जिस पद की समास विधायक सूत्र में एक ही विभक्ति नियत हो तो [वह पद] उपसर्जन संज्ञक हो। अपूर्वनिपाते । पूर्वनिपाताख्य जो उपसर्जन कार्य्य है उसको वर्जि के । "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या [सौनाग व्याकरण सिद्ध वार्त्तिक-सामासिक १९०] । यहाँ जैसे पञ्चम्यन्त ही पद का नियम है इसलिये उत्तर पद की उपसर्जन संज्ञा होती है । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः=निष्कौशाम्बिः । यहाँ उपसर्जनसंज्ञा का प्रयोजन यह है कि स्त्रीप्रत्यय को [अगले सूत्र से] ह्रस्व हो जाता है । एकविभक्तीति किम् ? राजकुमारी[1] । अपूर्व-निपात इति किम् ? कौशाम्बीनीरिति । यहाँ कौशाम्बी की उपसर्जन संज्ञा नहीं होती ।

३३६—गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ।। अ० १ । २ । ४८ ।।

गो इति स्वरूपग्रहणम्, स्त्रीति प्रत्ययग्रहणं स्वरितत्वात् । [उपसर्जनग्रहणं तयोर्विशेषणम्] । इसका अर्थ यह है कि जो चतुर्थ अध्याय में 'स्त्रियाम्' इस अधिकार सूत्र करके प्रत्यय कहे हैं उनका यहाँ ग्रहण है । उपसर्जन गोशब्दान्त प्रातिपदिक को और उपसर्जन स्त्रीप्रत्ययान्त प्रातिपदिक को ह्रस्व हो । चित्रगुः । शबलगुः । निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः । अतिखट्वः । अतिमालः । उपसर्जन-स्येति किम् ? राजकुमारी । स्वरितत्वात् किम् ? अतितन्त्रीः । अतिलक्ष्मीः । अतिश्रीः ।

३३७—कडाराः कर्मधारये ।। अ० २ । २ । ३८ ।।

---

१. यहाँ एक विभक्ति का नियम इसलिये नहीं है कि जिस षष्ठ्यन्त की उपसर्जन संज्ञा होती है उससे सब विभक्ति आती हैं । जैसे—राज्ञः कुमारी । राज्ञोः कुमार्य्यौ । राज्ञां कुमार्य्यः । इत्यादि ।

कर्मधारय समास में कडार [आदि शब्द गणपाठ सू० १८] शब्द का पूर्वनिपात विकल्प करके हो । जैसे—[कडारश्चासौ जैमिनिश्च =] कडारजैमिनिः जैमिनिकडारः इत्यादि[1] । [कडारादि गुणवाची शब्दों के विशेषण होने से पूर्वनिपात प्राप्त था सो इससे विकल्प हो गया । कर्मधारय इति किम् ? कडारपुरुषो ग्रामः । यहाँ बहुव्रीहि में न हो ।

३६८—परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ॥ अ० २ । ४ । २६ ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर पद का लिङ्ग हो । द्वन्द्व । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तत्पुरुष । अर्द्धं पिप्पल्या अर्द्धपिप्पली । अर्द्धकोशातकी ।

३३९—वा०—द्विगुप्राप्तापन्नालंपूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

द्विगु [समास] । प्राप्त [पूर्व] । आपन्न [पूर्व और] अलं पूर्वक तथा गतिसंज्ञक इन समासों में पर पद का लिङ्ग न हो । [द्विगु] पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः = पञ्चकपालः [यहाँ द्विगु में कपाल शब्द का लिङ्ग नहीं हुआ] । [प्राप्त पूर्व—] प्राप्तो जीविकां = प्राप्तजीविकः [यहाँ जीविका शब्द का] । [आपन्न पूर्व]—आपन्नो जीविकां = आपन्नजीविकाः [यहाँ भी जीविका शब्द का] । अलं पूर्व—अलं जीविकायै = अलंजीविकाः [यहाँ अलंपूर्व जीविका शब्द का] । गतिसमास—निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः = निष्कौशाम्बिः [यहाँ कौशाम्बी शब्द का लिङ्ग नहीं हुआ] । निर्वाराणसिः ।

---

१. जो 'प्राक्कडारात्समासः' इस सूत्र में समास का अधिकार किया था वह पूरा हो गया । अब इसके आगे समास में किस पद के लिङ्ग का प्रयोग होना चाहिये, इसका आरम्भ हुआ है ।

३४०–अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिश्श्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ॥

अ० ५ । ४ । ७७ ॥

ये २५ [शब्द] बहुव्रीहि आदि समासों में अच् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं सो आदि में तीन बहुव्रीहि हैं :—

अविद्यमानानि चत्वारि सेनाङ्गानि यस्य सः=अचतुरः । विगतानि चत्वारि यस्य सः=विचतुरः । शोभनानि [चत्वारि] यस्य सः=सुचतुरः ।

इससे आगे ११ ग्यारह द्वन्द्व समास में निपातन किये हैं:—

स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । [अक्षि च भ्रुवौ च] अक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च=दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च=ऊर्वष्ठीवम् । टिलोपो निपात्यते । पादौ चाष्ठीवन्तौ च=पदष्ठीवम् [पादस्य पद्भावो निपात्यते] । नक्तं च दिवा च=नक्तन्दिवम् । रात्रौ च दिवा च=रात्रिन्दिवम् । पूर्वपदस्य मान्तत्वन्निपात्यते । अहनि च दिवा च=अहर्दिवम् । [ननु च पर्यायावेतौ कथमनयोर्द्वन्द्वः ?] वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते । अहन्यहनीत्यर्थः ।

एक अव्ययीभाव साकल्य अर्थ में है:—सरजसमभ्यवहरति ।

इससे परे तत्पुरुष जानो:—निश्चितं श्रेयो=निश्श्रेयसम् ।

यहाँ से परे षष्ठी समास है:—पुरुषस्य आयुः=पुरुषायुषम् ।

इससे परे द्विगुः हैं:—द्वे आयुषी समाहृते=द्व्यायुषम् । त्र्यायुषम् ।

इससे परे द्वन्द्वः—ऋक् च यजुश्च ॥ ऋग्यजुषम् ।

आगे उक्षशब्दान्त तीन कर्मधारय समास हैं:=जातश्चासावुक्षा च=जातोक्षः। महोक्षः। वृद्धोक्षः।

इससे परे एक अव्ययीभाव समास है:—शुनः समीपं= उपशुनम्।

इससे परे सप्तमी तत्पुरुष समास है:—गोष्ठे श्वा=गोष्ठश्वः।

जिस-जिस समास में जो-जो निपातन किये हैं वे उसी-उसी समास में निपातन जानने चाहियें।

३४१—व०—चतुरोऽच्प्रकरणे त्र्युपाभ्यामुपसंख्यानम् ॥

त्रि और उपशब्द से परे जो चतुर शब्द उससे समासान्त अच् प्रत्यय हो। जैसे—[त्रयो वा चत्वारो वा]=त्रिचतुराः। [चतुर्णां समीपे=] उपचतुराः [यहाँ बहुव्रीहौ० अ० ५।४।७३ ॥ सा० २१० ॥ से डच् प्राप्त था सो इससे अच् का विधान किया]।

३४२—द्वितीये चाऽनुपाख्ये ॥ अ० ६।३।८० ॥

जो प्रत्यक्ष जाना जाय सो उपाख्य और जो इससे भिन्न है सो कहिये अनुपाख्य अर्थात् अनुमेय है, जहाँ द्वितीय [सह प्रयुक्त दो में अप्रधान को द्वितीय कहते हैं] अनुपाख्य हो वहाँ सह शब्द को आदेश हो। सबुद्धिः [?]। साग्निः कपोतः। सपिशाचा वात्या। सराक्षसीका शाला। यहाँ अग्नि आदि साक्षात् नहीं होते किन्तु अनुमानगम्य हैं।

३४३—ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचन-बन्धुषु ॥ अ० ६।३।८५ ॥

ज्योतिष्, जनपद, रात्रि, नाभि, नामन्, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बन्धु ये [१२] उत्तरपद परे होवें तो समास को स आदेश हो। समानं च तज्ज्योतिश्च=सज्योतिः। समानं

ज्योतिर्यस्मिन् स=सज्योतिर्व्यवहारः । सजनपदः । सरात्रिः । सनाभिः । सनामा [सर्वनामस्थाने० अ० ६ । ४ । ८ ।। इससे दीर्घ] । सगोत्रः । सरूपः । सस्थानः । सवर्णः । सवयाः [अत्वसन्तस्य० अ० ६ । ४ । १४ ।। इससे दीर्घ] सवचनः । सबन्धुः ।

३४४–चरणे ब्रह्मचारिणि ।। अ० ६ । ३ । ८६ ।।

आचरण अर्थ में ब्रह्मचारी उत्तरपद परे हो तो समान शब्द को स आदेश हो । समानो ब्रह्मचारी=सब्रह्मचारी । जो एक वेद पढ़ने और आचार्य्य के समीप व्रत को धारण करता है वह सब्रह्मचारी कहाता है ।

३४५–इदंकिमोरीश्की ।। अ० ६ । ३ । ९० ।।

जो दृक्, दृश् और वतु परे हों तो इदम् और किम् शब्द को ईश् और की आदेश हों । ईदृक् । ईदृशः । इयान् । कीदृक् । कीदृशः । कियान् ।

३४६–वा०––दृक्षे चेति वक्तव्यम् ।।

दृक्ष उत्तरपद के परे भी इदं और किम् शब्द को इश् और की आदेश हो जावें । जैसे—ईदृक्षः । कीदृक्षः ।

३४७–विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये[1] ।। अ० ६ । ३ । ९२ ।।

जो अप्रत्यय अर्थात् क्विप् तथा विच् प्रत्ययान्त अञ्चति परे हो तो विष्वग्, देव और सर्वनाम की टि को अद्रि आदेश हो ।

१. [सिद्धान्तकौमुदी में ऐसा पाठ है । अन्य महाभाष्यादि प्रायः सभी ग्रन्थों में "विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ व प्रत्यये" इस प्रकार पाठ मिलता है । तत्वबोधिनीकार ने दोनों पाठ स्वीकार कर लिखा है—"अप्रत्ययान्तेऽञ्चताविति" । अविद्यमानः प्रत्ययोऽप्रत्ययः क्विन् क्विबादिः: "अञ्चतौ व प्रत्यये" इति पाठे तु "व प्रत्ययान्तेऽञ्चतौ" इति व्याख्यम्] ।।

विष्वगञ्चतीति = विष्वद्र्यङ् । देवद्र्यङ् । सर्वनाम । तद्र्यङ् । यद्र्यङ् । विष्वग्देवयोरिति किम् ? अश्वाची । अप्रत्यय इति किम् ? विष्वगञ्चनम् ।

३४८—वा०—छन्दसि स्त्रियां बहुलमिति वक्तव्यम् ॥

वेदविषयक स्त्रीलिङ्ग में विष्वग् आदि की टि को अद्रि आदेश बहुल करके हो । जैसे – विश्वाची च घृताची चेत्यत्र न भवति । कद्रीचीत्यत्र तु भवत्येव ।

३४९—समः समिः ॥ अ० ६ । ३ । ९३ ॥

जो अप्रत्ययान्त [व प्रत्ययान्त] अञ्चति परे हो तो सम् के स्थान में समि आदेश हो । सम्यक् । सम्यञ्चौ । सम्यञ्चः ।

३५०—तिरसस्तिर्यलोपे ॥ अ० ६ । ३ । ९४ ॥

अप्रत्ययान्त [व प्रत्ययान्त] अलोप रहित अञ्चति उत्तरपद परे हो तो तिरस् के स्थान में तिरि आदेश हो । तिर्यङ् । तिर्यञ्चौ । तिर्यञ्चः । अलोप इति किम् ? तिरश्चौ । तिरश्चे [यहाँ अचः । अ० ६ । ४ । १३८ ॥ इससे अकार लोप हुआ है और तिर्यादेशाभाव में श्चुत्व] ।

३५१—सहस्य सध्रिः ॥ अ० ६ । ३ । ९५ ॥

जो अप्रत्ययान्त [व प्रत्ययान्त] अञ्चति उत्तरपद परे हो तो सह शब्द को सध्रि आदेश हो । सध्र्यङ् सध्र्यञ्चौ । सध्र्यञ्चः ।

३५२—सधमादस्थयोश्छन्दसि ॥ अ० ६ । ३ । ९६ ॥

वेदविषय में माद और स्थ उत्तरपद परे हों तो सह के स्थान में सध आदेश हो । सधमादो द्युम्न एकास्ताः । सधस्थाः ।

३५३—द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ॥ अ० ६ । ३ । ९७ ॥

द्वि अन्तर् और उपसर्गों से परे वप् शब्द के आदि अक्षर

के स्थान में ईत् आदेश होता है। द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन्नगरे तद्द्वीपम् । अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन्ग्रामे सोऽन्तरीपः अभिगता आपोऽस्मिन्सोऽभीपो ग्रामः इत्यादि[1] ।

३५४–ऊदनोर्देशे ।। अ० ६ । ३ । ९८ ॥

देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार को ऊकार आदेश हो। अनूपो देशः। देश इति किम् ? अन्वीपम् । [दीर्घ उच्चारण इसलिये है कि अवग्रह करने पर भी दीर्घ रहे जैसे—अनु ऊपोऽनूप इति] ।

३५५–अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ।। अ० ६ । ३ । ९९ ॥

जो आशिष्, आशा, आस्था, आस्थित, उत्सुक, ऊति, कारक, राग और छ प्रत्यय परे हों तो जो षष्ठी तृतीया विभक्ति रहित अन्य शब्द उसको दुक् का आगमन हो । अन्या आशीः=अन्यदाशीः । अन्या आशा=अन्यादाशा । अन्य आस्था, अन्यदास्था । अन्य आस्थितः=अन्यदास्थितः । अन्या उत्सुकः=अन्यदुत्सुकः। अन्या ऊतिः=अन्यदूतिः । अन्यः कारकः=अन्यत्कारकः। अन्योरागः= अन्यद्रागः अन्यस्मिन् भवः=अन्यदीयः गहादिष्वन्य शब्दो द्रष्टव्यः [आकृतिगणत्वात्] अषष्ठ्यतृतीयास्थस्येति किम् ? अन्यस्य आशीः=अन्याशीः । अन्येन आस्थितः=अन्यास्थितः। [कारके छे च नायं निषेधः[2] । अन्यस्य कारकः=अन्यत्कारकः । अन्यस्य अयम्=अन्यदीयः] ।

---

१. 'आदेः परस्य' [अ० १ । १ । ५३] इससे अप् शब्द के अकार के स्थान में ईत् आदेश होता है।

२. [अषष्ठी तृतीयास्थ इत्येव सिद्धे निषेधानित्यत्वज्ञापनार्थाद् द्विर्नञ [अषष्ठी, अतृतीयेति] उपादानात् कारक छे च अषष्ठीति निषेधो न इत्यर्थः] ॥

३५६–अर्थे विभाषा ॥ अ० ६ । ३ । १०० ॥

अर्थ उत्तरपद परे हो तो अन्य शब्द को दुक् का आगम विकल्प करके हो । अन्योर्थः=अन्यदर्थः । पक्षे अन्यार्थः ।

३५७–कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ॥ अ० ६ । ३ । १०१ ॥

जो अजादि उत्तरपद परे और तत्पुरुष समास हो तो कु शब्द के स्थान में कत् आदेश हो । [कुत्सितोऽजः=] कदजः । कदश्वः । कदुष्ट्रः । कदन्नम् । इत्यादि । तत्पुरुष इति किम् ? कूष्ट्रो राजा [यहाँ बहुव्रीहि है] । अचीति किम् ? कुब्राह्मणः । कुपुरुषः ।

३५८–वा०–कद्भावे त्रावुपसंख्यानम् ॥

जो कु शब्द को कत् आदेश कहा है सो त्रि शब्द के परे भी होवे । कुत्सितास्त्रयः=कत्त्रयः ।

३५९–रथवदयोश्च ॥ अ० ६ । ३ । १०२ ॥

रथ और वद उत्तरपद परे हों तो कु शब्द को कत् आदेश हो । कद्रथः । कद्वदः ।

३६०–तृणे च जातौ ॥ अ० ६ । ३ । १०३ ॥

जाति अर्थ में तृण उत्तरपद परे हो तो कु के स्थान में कत् आदेश हो । कत्तृणा नाम जातिः । जाताविति किम् ? कुत्सितानि तृणानि=कुतृणानि ।

३६१–का पथ्यक्षयोः ॥ अ० ६ । ३ । १०४ ॥

पथिन् और अक्ष उत्तरपद परे हों तो कु शब्द को का आदेश हो । कुत्सितः पन्था=कापथः । [कुत्सितो अक्षः, अथवा कुत्सिते अक्षिणी अस्येति=] काक्षः ।

३६२–ईषदर्थे ॥ अ० ६ । ३ । १०५ ॥

किञ्चित् अर्थ में वर्त्तमान कु शब्द को उत्तरपद परे हो तो का आदेश हो । ईपल्लवणम् = कालवणम् । कामधुरम् । काऽम्लम् । ईषदुष्णम् = कोष्णम् ।

३६३–विभाषा पुरुषे ।। अ० ६ । ३ । १०६ ।।

पुरुष उत्तरपद परे हो तो कु शब्द को का आदेश विकल्प करके हो । कुत्सितः पुरुषः = कापुरुषः कुपुरुषः ।

३६४–कवं चोष्णे ।। अ० ६ । ३ । १०७ ।।

उष्ण उत्तरपद परे हो तो कु शब्द को कव आदेश विकल्प करके हो, पक्ष में का हो । ईषदुष्णम् + कवोष्णम् । कदुष्णम् ।

३६५–पथि च छन्दसि ।। अ० ६ । ३ । १०८ ।।

वेद में पथिन् उत्तरपद हो तो कु शब्द को कव आदेश हो । पक्ष में विकल्प करके का भी हो । कवपथः । कापथः । कुपथः ।

३६६–पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ।। अ० ६ । ३ । १०९ ।।

जिन शब्दों में लोप, आगम और वर्णविकार किसी सूत्र से विधान न किये हों और वे शिष्ट पुरुषों ने उच्चारण किये हैं तो वैसे ही उन शब्दों को जानना चाहिये ।[1] पृषदुदरमस्य = पृषोदरम् । पृषत् उद्वानमस्य = पृषोद्वानम् । यहाँ तकार का लोप है । वारिवाहकों = बलाहकः । यहाँ वारि शब्द को ब आदेश है तथा वाहक पद के आदि को ल आदेश जानो । जीवनस्य मूतो = जीमूतः । यहाँ वन शब्द का लोप है । शवानां शयनं = श्मशानम् । शव शब्द को श्म आदेश और शयन के स्थान में शान जानो । ऊर्ध्वं खमस्येति = ऊखलम् [उलूखलम्] । यहाँ ऊर्ध्व को ऊ [उलू] तथा ख शब्द

१. यह सूत्र अन्य सब साधुत्वकारक सूत्रों के विषयों को छोड़ के बाकी विषय में प्रवृत्त होता है ।।

खल आदेश जानना चाहिये । पिशिताशः=पिशाचः । यहाँ पिशि को पि और ताश के स्थान में शाच आदेश है । ब्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति=बृसी । सद धातो से अधिकरण में डट् प्रत्यय और उपपद ब्रुवत् शब्द को बृ आदेश हो जाता है । मह्यां रौतीति=मयूरः । अच् प्रत्यय के परे रूधातु के टि का लोप और मही शब्द को मय् आदेश हो जाता है । इसी प्रकार और भी अश्वत्थ, कपित्थ आदि शब्दों की सिद्धि समझनी चाहिये ।

३६७-वा०—दिक्शब्देभ्य उत्तरस्य तीरशब्दस्य तारभावो वा भवति ।।

दिशावाची शब्दों से परे तीर शब्द को तार आदेश विकल्प करके हो । दक्षिणतीरम् । दक्षिणतारम् । उत्तरतीरम् । उत्तरतारम् ।

३६८-वा०—वाचो वादे डत्वं च लभावश्चोत्तरपदस्येञि प्रत्यये भवति[1] ।।

---

१. यहाँ स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजी के किसी लेखक ने जो चाहे पं० दिनेशराम रहा हो वा अन्य कोई, काशिका का अन्धानुसरण ही किया है । जिस प्रकार काशिका में अशुद्ध छप रहा है वैसा ही पाठ यहाँ रख दिया और अर्थ भी अशुद्ध कर दिया । शुद्ध पाठ इस प्रकार होना चाहिये:—

वा०—वाचो वादे डत्वं बलभावश्चोत्तरपदस्येञि प्रत्यये भवति ।।

महाभाष्य ।।

अर्थात् वाद उत्तरपद के परे वाक् शब्द को ड आदेश और उत्तरपद के वाद शब्द को बल आदेश होता है इञ् प्रत्यय परे हो तो । जैसे—वाचं वदतीति [कर्मण्यण् अ० ३ । २ । १ ।।] वाग्वादः । तस्यापत्यम् [अत इञ् ।। अ० ४ । १ । ९४] वाड्वालिः ।। सं० ।।

वाद उत्तरपद के परे वाक् शब्द को ड आदेश और इञ् प्रत्यय के परे उत्तर वाद शब्द को ल आदेश हो जावे। वाचं वदतीति वाग्वादः तस्यापत्यं वाड्वालिः।

३६९–वा०—षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च भवति ॥

षट् शब्द को उ हो दतृ, दश, और धा उत्तरपद परे हों तो और उत्तरपद के आदि को मूर्द्धन्य आदेश हो। षडदन्ता अस्य षोडन्। षट् च दश च षोडश।

३७०–वा०–धासु वा षष उत्वं भवति उत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥

पूर्वोक्त कार्य्य धा उत्तरपद में विकल्प करके हो [ष्टुत्व तो नित्य ही हो]। षोढा। षड्धा कुरु।

३७१–वा०—दुरो दाशनाशदभध्येषूत्वं वक्तव्यमुत्तरपदादेश्च ष्टुत्वम् ॥

दुर् शब्द को उत्व हो दाश नाश दभ और ध्य ये उत्तरपद परे हों तो और उत्तरपदों के आदि को मूर्द्धन्य आदेश हो। कृच्छ्रेण दाश्यते नाश्यते दभ्यते च यः स दूडाशः। दूणाशः। दूडभः। दुष्टं ध्यायतीति=दूढ्यः इत्यादि।[1]

---

१. आगे वार्त्तिक इस प्रकार और भी हैं:—

वा०—स्वरो रोहतौ छन्दसि उत्वं वक्तव्यम्।

एहि त्वं जाये स्वो रोहाव ॥

वा०—पीवोपवसनादीनां छन्दसि लोपो वक्तव्यः ॥

[पीवस्] पीवः उपवसनं येषां ते पीवोपवसनाः तेषाम्। [पयस्] एवमेव पयोपवसनानाम्। उभयत्र सकार लोपः। वर्णागम इति। निरुक्त [निश्चयेनेनोच्यतेऽर्थोऽनेनेति निरुक्तम्] शास्त्रे ये शब्दा व्युत्पाद्यन्ते तेषां पृषोदरादित्वादेव साधुत्वमिष्यत इतीमं श्लोकमाह वर्णागम इत्यादि। इति सर्वं न्यासे सुव्याख्यातम् ॥ सं० ॥

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ।।

[वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश और धातु का अपने प्रसिद्ध अर्थ से भिन्न अर्थ के साथ योग, ये पांच प्रकार का निरुक्त कहा जाता है ।

३७२–संहितायाम् ।। अ० ६ । ३ । ११४ ।।

अब जो कार्य कहेंगे सो संहिता के विषय में होंगे अर्थात् यह अधिकार सूत्र है ।

३७३–कर्णे लक्षणस्याविष्टाष्टपञ्चमणिभिन्नच्छिन्नच्छिद्रस्रुव-स्वस्तिकस्य ।। अ० ६ । ३ । ११५ ।।

विष्ट, अष्ट, पञ्च, मणि, भिन्न, छिन्न, छिद्र, स्रुव, स्वस्तिक, इन नव शब्दों को छोड़ के कर्ण शब्द उत्तरपद परे हो तो लक्षणवाची पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो संहिता विषय में । दात्रमिव कर्णावस्य = दात्राकर्णः । द्विगुणाकर्णः । त्रिगुणाकर्णः । द्व्यङ्गुलाकर्णः । त्र्यङ्गुलाकर्णः । यत् पशूनां स्वामिविशेषसम्बन्धज्ञापनार्थं दात्राकारादि क्रियते तदिह लक्षणं गृह्यते । लक्षणस्येति किम् ? शोभनकर्णः । अविष्टादीनामिति किम् ? विष्टकर्णः । अष्टकर्णः । पञ्चकर्णः । मणिकर्णः । भिन्नकर्णः । छिन्नकर्णः । छिद्रकर्णः । स्रुवकर्णः । स्वस्तिककर्णः ।

३७४–नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ।। अ० ६ । ३ । ११६ ।

जो ये नह[1] आदि धातु क्विप् प्रत्ययान्त उत्तरपद परे हों

---

१. 'णह बन्धने', 'वृतु वर्त्तने', 'वृषु सेचने', 'व्यध ताडने', 'रुच दीप्तौ', पह मर्षणे', 'तनु विस्तारे' ।

(क) 'उपनह्यते' इति = उपानत् ।

तो संहिता विषय में पूर्वपद को दीर्घादेश हो। [नहि]—उपानत्। परीणत्। [वृति]—नीवृत्। उपावृत्। [वृषि]—प्रावृट्। उपावृट्। [व्यधि]—मर्मावित्। हृदयावित्। श्वावित्। [रुचि]—नीरुक्। अभीरुक्। [सहि]—ऋतीषट्। [तति]—तरीतत्। क्वाविति किम्? परिणहनम्।

३७५–वनगिर्य्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम् ॥

अ० ६। ३। ११७॥

संज्ञा विषय में वन उत्तरपद परे हो तो कोटर आदि [गणपाठ सूत्र १७५] और गिरि परे हो तो किंशुलक आदि [गणपाठ सूत्र १७५] पूर्वपदों को दीर्घ आदेश हो। कोटरावणम्। [षष्ठीसमासः]। मिश्रकावणम्। सिध्रकावणम्। सारिकावणम्। किंशुलकागिरिः। अञ्जनागिरिः। कोटरकिंशुलकादीनामिति किम्? असिपत्रवनम्। कृष्णगिरिः।

३७६–अष्टनः संज्ञायाम् ॥ अ० ६। ३। १२५॥

अष्टन् पूर्वपद को [उत्तरपद परे हो तो] दीर्घ आदेश हो संज्ञा विषय में। अष्टावक्रः। अष्टाबन्धुरः। अष्टापदम्। संज्ञायामिति किम्? अष्टपुत्रः। अष्टबन्धुः।

(ख) 'निवर्त्तते' इति = नीवृत्।
(ग) 'प्रवर्षति' इति = प्रावृट्।
(घ) 'मर्माणि विध्यति' इति = मर्मावित्।
(ङ) 'निरोचते' इति = नीरुक्।
(च) 'ऋतिं सहते' इति = ऋतीषट्।
(छ) 'परितनोति' इति = परीतत्। काशिकायान्तु "तरीतत्" इति पाठः अत्रापि तथैव ॥ सं० ॥

३७७—छन्दसि च ॥ अ० ६ । ३ । १२६ ॥

वेद विषय में अष्टन् पूर्वपद को उत्तरपद परे हो तो दीर्घ आदेश हो। आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्। अष्टाहिरण्या दक्षिणा। अष्टापदं सुवर्णम्।

३७८—वा०—गवि च युक्ते भाषायामष्टनो दीर्घो भवतीति वक्तव्यम् ॥

लौकिक प्रयोग विषय में युक्त गो शब्द उत्तरपद परे हो तो अष्टन् पूर्वपद को दीर्घ हो जावे। जैसे—अष्टागवं शकटम्।

३७९—चितेः कपि ॥ अ० ६ । ३ । १२७ ॥

कप् प्रत्यय परे हो तो चिति पद को दीर्घ आदेश हो। द्विचितीकः। त्रिचितीकः।

३८०—विश्वस्य वसुराटोः ॥ अ० ६ । ३ । १२८ ॥

वसु और राट् उत्तरपद परे हों तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो। [विश्वं वसु यस्य =] विश्वावसुः। [विश्वस्मिन् राजते इति =] विश्वाराट्।

३८१—नरे संज्ञायाम् ॥ अ० ६ । ३ । १२९ ॥

संज्ञा विषय में जो नर उत्तरपद परे हो तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ हो। विश्वानरो नाम तस्य = वैश्वानरिः पुत्रः। संज्ञायामिति किम्? विश्वे नरा यस्य स विश्वनरः।

३८२—मित्रे चर्षौ ॥ अ० ६ । ३ । १३० ॥

ऋषि अर्थ में मित्र उत्तरपद परे हो तो विश्व पूर्वपद को दीर्घ आदेश हो। विश्वामित्रो नाम ऋषिः। ऋषाविति किम्? विश्वमित्रो माणवकः।

३८३–सर्वस्य द्वे ॥ अ० ८ । १ । १ ॥

सब शब्दों के दो-दो रूप होवें [अर्थात् सबको द्वित्व हो] । यह अधिकार सूत्र [पदस्य । अ० ८।१।१६ ॥ इस सूत्र से पूर्व तक] है ।

३८४–तस्य परमाम्रेडितम् ॥ अ० ८ । १ । २ ॥

दो भागों का जो पर रूप है [अर्थात् द्वित्व किये हुए शब्द का जो पर भाग है] सो आम्रेडित संज्ञक हो । चौर चौर ३ । दस्यो दस्यो ३ । घातयिष्यामि त्वा । बन्धयिष्यामि त्वा ।

३८५–अनुदात्तं च ॥ अ० ८ । १ । ३ ॥

[यदाम्रेडितमनुदात्तञ्च तत्] जो द्वित्व हो तो अनुदात्त संज्ञक भी हो ।

३८६–नित्यवीप्सयोः ॥ अ० ८ । १ । ४ ॥

नित्य [अर्थात् आभीक्ष्ण्य][1] और वीप्सा अर्थ में वर्त्तमान जो शब्द उसको द्वित्व हो । तिङ्, अव्यय और कृत इनमें तो नित्य होता है । तथा सुप् में वीप्सा होती है । व्याप्तुमिच्छा वीप्सा[2] । [नित्य]-पचति पचति । पठति पठति । जल्पति जल्पति । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । भोजं भोजं व्रजति । लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । वीप्सा —ग्रामो ग्रामो रमणीयः । जनपदो जनपदो रमणीयः । पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति ।

३८७–परेर्वर्जने ॥ अ० ८ । १ । ५ ॥

वर्जन [परिहार] अर्थ में जो परि हो तो उसको द्वित्व हो ।

---

१. [आभीक्ष्ण्यमिह नित्यता । आभीक्ष्ण्यं च क्रियाधर्मः । यां क्रियां कर्त्ता प्राधान्येनानुपरमन्करोति तन्नित्यम्] ॥ इति काशिकायाम् ॥

२. नानाभूतार्थवाचिना शब्दानां यान्यधिकरणानि वाच्यानि तेषां क्रियागुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुमिच्छा वीप्सा ॥ इति काशिकायाम्] ॥

परि परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः। परि परि सौवीरेभ्यः। वर्जन इति किम्? ओदनं परिषिञ्चति।

३८८–वा०—परेर्वर्जनेऽसमासे वेति वक्तव्यम् ॥

असमास[1] अर्थात् जिस पक्ष में समास नहीं होता वहाँ विकल्प करके द्विर्वचन हो। परि परि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः। परित्रिगर्त्तेभ्यः।

३८९–प्रसमुपोदः पादपूरणे ॥ अ० ८।१।६॥

पाद पूरा करना ही अर्थ हो तो प्र सम् उप उद् इनको द्वित्व हो। प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे। संसमिद्युवसे वृषन्। उपोपमे परामृश। किन्नोदुदुहर्षसे दातवाउ। [पादपूरण इति किम्? प्रदेवं देव्या धिया]।

३९०–उपर्य्यध्यधसः सामीप्ये ॥ अ० ८।१।७॥

उपरि, अधि और अधस् इनको द्वित्व हो समीप अर्थ में। [सामीप्य दो प्रकार का होता है काल कृत तथा देशकृत] उपर्य्युपरि दुःखम् [दुःखस्योपरिष्टात् समीपे काले दुःखमित्यर्थः]। उपर्य्युपरिग्रामम् [ग्रामस्योपरिष्टात् समीपे देशे इत्यर्थः]। [एवमेव] अध्यधिग्रामम्। अधोधोवनम् [वनस्याधस्तात् समीपे देशे इत्यर्थः]। सामीप्य इति किम्? उपरिचन्द्रमाः।

३९१–वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ॥

अ० ८।१।८॥

---

१. "अव्ययीभाव समास का विकल्प "विभाषा" अधिकार में (अपपरि०) इस सूत्र से हो जाता है॥" [इस टिप्पणी में "अधिकार में" इन शब्दों की आश्वयकता नहीं क्योंकि यह अलग अलग नहीं अपि तु एक ही सूत्र है, देखें सा० सूत्र २२]॥ सं०॥

असूया आदि अर्थों में जो वाक्य उसका आदि जो आमन्त्रित पद उसको द्वित्व हो। (असूया) और के गुणों को न सहना। (सम्मति) सत्कार (कोप) क्रोध (कुत्सन) निन्दा (भर्त्सन)[1] धमकाना।

(असूया) माणवक ३ माणवक अभिरूपक ३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

(संमति) माणवक ३ माणवक अभिरूपक ३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि।

(कोप) देवजत्त ३ देवदत्त अविनीतक ३ अविनीतक संप्रति वेत्स्यसि दुष्ट!

(कुत्सन) शक्तिके ३ शक्तिके यष्टिके ३ यष्टिके रिक्ता ते शक्तिः।

(भर्त्सन) चौर चौर ३ वृषल वृषल ३ घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामि त्वा[2]। वाक्यादेरिति किम्? अन्तस्य मध्यस्य च माभूत् शोभनः खल्वसि माणवक। आमन्त्रितस्येति किम्? उदारो देवदत्तः। असूयादिष्विति किम्? देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम्।

३९२—एकं बहुव्रीहिवत्॥ अ० ८। १। ९॥

[द्वे की अनुवृत्ति है]। द्वित्व का जो एक शब्दरूप है उसको बहुव्रीहि के समान कार्य्य हो [अर्थात् द्वित्व किया हुआ एक शब्द बहुव्रीहिवत् हो] के दो प्रयोजन हैं। सुब्लोप और पुंवद्भाव। [सुब्लोप]—

---

१. कोप और भर्त्सन में इतना भेद है कि कोप में अन्तःकरण से दूसरे को दुःख देना चाहता है और भर्त्सन में ऊपर ही का तेजमात्र दिखाया जाता है। [अपकारशब्दैर्भयोत्पादनं भर्त्सनमिति काशिका]॥

२. "आम्रेडितं भर्त्सने" अ० ८। २। ९५॥ इससे यहाँ आम्रेडित को प्लुत हुआ है शेष असूयादि में पूर्वपद को प्लुत हुआ है]॥

एकैकमक्षरं वदन्ति । [पुंवद्भाव]—एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति । एकैकस्मै[1] देहि ।

३९३–आबाधे च ।। अ० ८ । १ ।१० ।।

आबाध नाम पीड़ा अर्थ में वर्त्तमान शब्द को द्वित्व हो और बहुव्रीहि के समान कार्य हो । गतगतः । नष्टनष्टः । पतितपतितः । प्रियस्य चिरगमनादिना पीड्यमानः कश्चिदेवं प्रयुङ्क्ते प्रयोक्ता ।

३९४–कर्मधारयवदुत्तरेषु ।। अ० ८ । १ । ११ ।।

यहाँ से आगे जो द्वित्व कहेंगे वहाँ कर्मधारय के तुल्य कार्य होगा । कर्मधारयवत् कहने से तीन प्रयोजन हैं । सुब्लोप, पुंवद्भाव और अन्तोदात्त [त्व] ।

सुब्लोप—पटुपटुः । मृदुमृदुः । पण्डितपण्डितः ।
पुंवद्भाव—पटुपट्वी । मृदुमृद्वी । कालककालिका ।
अन्तोदात्त [त्व] । पटुपटुः । पटुपट्वी ।

३९५–प्रकारे गुणवचनस्य ।। अ० ८ । १ । १२ ।।

प्रकार नाम सादृश्य अर्थ के वर्त्तमान [गुणवचन] शब्द को द्वित्व हो [और वह कर्मधारयवत् समझा जावे] । पटु पटु । पण्डित पण्डित । प्रकारवचन इति किम् ? पट्देवदत्तः । गुणवचनस्येति किम् । अग्निर्माणवकः [यहाँ अग्नि शब्द सर्वदा गुणवचन नहीं है अतः द्वित्व न हुआ] ।

---

१. बहुव्रीहि समास में सर्वनाम में संज्ञा का [न बहुव्रीहौ ।। अ० १ । १ । २८ ।। से] निषेध किया है सो वह निषेध यहाँ इसलिये नहीं लगता कि जो मुख्य करके बहुव्रीहि हो वहीं निषेध हो यह मुख्य नहीं है [यहाँ बहुव्रीहिवद्भाव से बहुव्रीहि है यह बताकर महाभाष्य में आगे स्वर समासान्त विधि होना भी इस बहुव्रीहि का विषय नहीं यह स्पष्ट कर दिया है] ।

३६६–वा०—आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।।

[अनुक्रम गम्यमान हो तो द्वित्व होता है] ।

मूले मूले स्थूलाः । अग्रे अग्रे सूक्ष्माः । ज्येष्ठं ज्येष्ठं प्रवेशय ।

३६७–वा०—स्वार्थेऽवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।।

[अपने अर्थ में निश्चय किये जाने पर अनेक में द्वित्व होता है] ।

अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं माषं देहि[1] । अवधार्यमाण इति किम् ? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि, द्वौ माषौ देहि, त्रीन् वा माषान् देहि । अनेकस्मिन् इति किम्[2] ? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि ।

३६८–वा०—चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम् ।।

[चापल अर्थ में द्वित्व होता है] । संभ्रमेण प्रवृत्तिश्चापलम्

---

१. स्वार्थं एतद् द्विर्वचनं वीप्सायाम् । अत्र हि द्वावेव माषौ दीयेते न सर्वे कार्षापणसम्बन्धिनो माषाः तेन वीप्सा न विद्यते, इति जयादित्यः ।
क: पुनर्वीप्सार्थः ? अनवयवाभिधानं वीप्सार्थः । अनवयवेन द्रव्याणामभिधानमेष वीप्सार्थः, इति भगवत्पतञ्जलिः ।। सं० ।।

२. अनेकस्मिन्निति किमर्थम् । अस्मात्कार्षापणदिह भवद्भ्यां माषं देहि । माषमेव देहि ।। किं पुनः कारणं न सिध्यति । अनवयवाभिधानं वीप्सार्थ इत्युच्यतेऽवयाभिधानं चात्र गम्यते । अतश्चवयवाभिधानं यो ह्युच्यतेऽस्मात्कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं माषं देहीति माषं माषमसौ दत्वा शेषं पृच्छति किमनेन क्रियतामिति । यः पुनरुच्यत इमं कार्षापणमिह भवद्भ्यां माषं माषं देहीति माषं माषमसौ दत्वा तूष्णीमास्ते ।।
महाभाष्य अ० ८ पा० १ आ० १ ।।

[चौंकने से हुई प्रवृत्ति को चापल कहते हैं और उसकी अभिव्यक्ति में द्वित्व होता है]। अहिरहिर्बुध्यस्व अहिरहिर्बुध्यस्व। नावश्यं द्वावेव शब्दौ प्रयोक्तव्यौ। किं तर्हि यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थोऽवगम्यते तावन्तः प्रयोक्तव्याः। अहिः ३ बुध्यस्व ३।

३६६—वा०—अभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

[अभीक्ष्ण्य अर्थात् नित्यरूप से पुनः पुनः होना अर्थ [देखें सा० सू० ३८६, पृ० ११९ टि० १] गम्यमान हो तो द्विर्वचन होता है]।

भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति।

४००—वा०—क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

[क्रिया के पुनः पुनः करने को क्रियासमभिहार कहते हैं। क्रिया के पुनः पुनः करने की अधिकता गम्यमान हो तो द्विर्वचन होता है]। स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति।

४०१—वा०—डाचि बहुलं द्वे भवत इति वक्तव्यम्[1] ॥

[डाच् प्रत्यय परे हो तो बहुल करके द्वित्व हो]।

पटपटा करोति। पटपटायते।

४०२—वा०—पूर्वप्रथमयोरर्थाऽतिशयविवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

[पूर्व और प्रथम शब्दों को अर्थ की अधिकता कहने की इच्छा में द्वित्व होता है]।

---

१. डाचि द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥ पटपटा करोति। पटपटायते ॥ अव्यक्तानुकरणडाजन्तस्य द्विर्वचनमिष्यते। इह न भवति। द्वितीया करोति। तृतीया करोति। तदर्थं केचिड्डाचि बहुलमिति पठन्तीति जयादित्यः ॥ सं० ॥

पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ति । प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते [अतिशयिकोऽपि दृश्यते अतिशयिक प्रत्यय भी देखा जाता है । पूर्वतरं पुष्यन्ति । प्रथमतरं पच्यन्ते ।

४०३–वा०–डतरडतमयोः समसंप्रधारणयोः स्त्रीनिगदे भावे द्वे भवत इति वक्तव्यम्[1] ।।

[तुल्यता के निश्चय करने में डतरडतमान्त शब्दों को द्वित्व हो यदि उनके भाव को स्त्रीलिङ्ग में कहना हो तो] ।

उभाविमावाढ्यौ । कतरा कतरा अनयोराढ्यता । सर्वे इमे आढ्याः । कतमा कतमा एषामाढ्यता । डतरडतमाभ्यामन्यत्रापि हि दृश्यते । उभाविमावाढ्यौ । कीदृशी कीदृशी अनयोराढ्यता । तथा स्त्रीनिगदाद् भावादन्यत्रापि हि दृश्यते उभाविमावाढ्यौ । कतरः कतरोऽनयोर्विभव इति ।

४०४–वा०–कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम्[2] ।।

समासवच्च बहुलम् । यदा न समासवत् प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य । [कर्मव्यतिहार अर्थात् क्रियाविनिमय अर्थ में सर्वनाम को द्वित्व होता है । और वह बहुलता मे समासवद्भाव होता है । जब वह समासवत् नहीं होता तब पूर्वपद को प्रथमैकवचनता होती है अर्थात् सुप् को सु होता है] ।

---

१. [डतरडतमयोः समसंप्रधारणायां स्त्रीनिगदे भावे । ऐसा महाभाष्य में पाठ] ।।

२. महाभाष्य में यह वार्त्तिक इस प्रकार हैं:—

"कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नः समासवच्च बहुलं यदा न समासवत्प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य ।। ११ ।।"

सिद्धान्तकौमुदी में इस प्रकार व्याख्यान है:—
"कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम् ।। बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत् । इतरशब्दस्य तु नित्यम् ।।' असमासवद्भावे पूर्वपदस्य सुपः सुर्वक्तव्यः ।। सं० ।।

अन्यमन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । अन्योन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । अन्योन्यस्येमे ब्राह्मणा भोजयन्ति । इतरेतरान् भोजयन्ति ।

४०५–वा०–स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य वाम्भावो वक्तव्यः ॥

[और स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में उत्तरपद की विभक्ति को विकल्प से आम् भाव होता है] ।

अन्योन्यामिमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः । अन्योन्यम्भोजयतः । इतरेतराम्भोजयतः । इतरेतरम्भोजयतः । अन्योन्यामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः । [अन्योऽन्यम्भोजयतः] । इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः । [इतरेतरम्भोजयतः] ।

४०६–द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु ॥ अ० ८ । १ । १५ ॥[1]

द्वन्द्व यहाँ द्वि शब्द को द्वित्व तथा पूर्वपद को अम् भाव और उत्तरपद को अकार आदेश निपातन किया है रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्रप्रयोग और अभिव्यक्ति इन अर्थों में । [अर्थात् रहस्यादि अर्थों में द्वि शब्द को द्वित्वादि करके द्वन्द्व शब्द निपातन किया है] ।

(रहस्य) द्वन्द्वं मन्त्रयते, द्वन्द्वं मिथुनायते[2] ।

(मर्यादावचन) आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते[3] । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति । पौत्रेण तत्पुत्रेणापीति[4] ।

(व्युत्क्रमण) द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः । द्विवर्गसम्बन्धात्पृथगवस्थिता इत्यर्थः ।

---

१. महाभाष्य में यहाँ तीन वार्त्तिक पढ़े हैं वे देख लेने चाहिये ॥ सं० ॥

२. राजा और मुख्यसभासद् एकान्त में विचार और विवाहित स्त्रीपुरुष ऋतुकाल में समागम करें ।

३. मिथुनीयन्ति ॥ सं० ॥ ४. पौत्रेणपीति पाठान्तरम् ॥ सं० ॥

(यज्ञपात्रप्रयोग) द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः [आसादयतीत्यर्थः] ।

(अभिव्यक्ति) द्वन्द्वं नारदपर्वतौ । द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ । द्वावप्यभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः । अन्यत्रापीति । 'द्वन्द्वं युद्धं प्रवर्त्तते' । 'द्वन्द्वानि सहते' इत्यादि] ।

—:०:—

वसुकालाङ्कभूवर्षे भाद्रमास्यसिते दले ।
द्वादश्यां रविवारेऽयं सामासिकः पूर्णोऽनघः ॥

[सज्जनो ! विक्रम संवत् १९३८ भाद्रकृष्णा द्वादशी रविवार को यह सामासिक ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ] ॥

—✻—

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतयतिवरमहाविद्वद्भिः
श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिभिः सुशिक्षितेन
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितः
पाणिनीयव्याख्यया सुभूषितः
सामासिकोऽयं ग्रन्थः
पूर्त्तिमगमत् ॥

शिक्षा व व्याकरणग्रंथ

* वर्णोच्चारणशिक्षा
* सन्धिविषय
* नामिक
* कारकीय
* सामासिक
* स्त्रैणताद्धित
* अव्ययार्थ
* आख्यातिक
* सौवर
* पारिभाषिक
* धातुपाठ
* गणपाठ
* उणादिकोष
* निघण्टु
* संस्कृतवाक्यप्रबोध
* व्यवहारभानु
* निरुक्त मूल
* अष्टाध्यायी मूल
* अष्टाध्यायीभाष्य

प्राप्ति-स्थान—

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर—३०५००१

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है ।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।